अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

□ मूल्य : 5.00

□ अंक : 18

□ 1-15 मई, 2014

□ वर्ष : 37

स्वतंत्रता के लिए एकता जरूरी है

ऐसी भारी लड़ाई में जबकि तमाम लोगों को एक दिल होने की जरूरत है, तब किसी गैर-जिम्मेदार अथवा पाखण्डी मनुष्य के भला-बुरा बोलने से हिन्दू-हिन्दू या मुसलमान-मुसलमान में झगड़ा पैदा हो, ऐसा नहीं होना चाहिए। इसके लिए मुझे आशा है कि स्वराज्य सभा तथा खिलाफत कमिटी की तरफ से नोटिस निकलेगा कि उनके प्रमाणपत्र के बिना कोई न बोले। कोई भी आदमी बोलने आये, तो उसे सुनने का आपको अधिकार है, परन्तु आपको पता तो चल जायेगा कि वह किसी संस्था का प्रतिनिधि नहीं है। जिस हुकूमत से हमें लड़ना है, उसका बन्दोबस्त जबरदस्त है। उनमें से कोई आदमी अफसर के हुक्म के बिना न बोलता है, न काम करता है। हममें भी यह शक्ति आनी चाहिए।

हम स्वतंत्र होना चाहते हों तो हिन्दू-मुसलमानों में एकता और साफदिली होनी चाहिए। कोई मुसलमान गफलत से कुछ बोल दे तो हिन्दुओं को उसे बरदास्त कर लेना चाहिए। इसी प्रकार कोई हिन्दू कुछ कह दे तो मुसलमानों को सहन कर लेना चाहिए।

(नवजीवन, 10.11.1920)

–महात्मा गांधी

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत

वर्ष : 37, अंक : 18

1-15 मई, 2014

सर्व सेवा संघ

द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

संपादक

बिमल कुमार

मो. 9235772595

प्रसार व्यवस्थापक

उमेश कुमार

मूल्य : पांच रुपये

शुल्क

वार्षिक : 100 रुपये

आजीवन : 1,000 रुपये

संपादकीय कार्यालय

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)

फोन : 0542-2440-385/223

ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com

sarvodayavns@yahoo.co.in

Website : sssprakashan.com

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये

आधा पृष्ठ : 1000 रुपये

चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

अंदर के पृष्ठों पर...

1. कविताएं... 2
2. अपनी प्रासंगिकता प्रस्तुत... 3
3. आत्ममंथन की अनिवार्यता... 4
4. श्रमदान से उपजा बौद्धिक... 5
5. पुस्तक परिचय... 6
6. फासीवाद के लौटने की... 7
7. महिला सशक्तीकरण में... 8
9. श्रीलंका : तमिल समस्या... 10
10. जी.एम. बीज : भूमि और... 12
11. मुक्ति का पहला कदम... 13
12. टिहरी बांध : अनदेखी... 15
13. शांति के लिए शिक्षण... 16
14. गतिविधियां एवं समाचार... 19
15. चण्डीप्रसाद भट्ट... 20

कविताएं

तुम्हारे जीने का क्या अर्थ

प्राणवायु :
वह पेड़ों के पास मिलेगी

प्रशांति :
वह पेड़ों के पास मिलेगी

नेत्रों का हरा सुख :
वह पेड़ों के पास मिलेगा

आध्यात्मिक
और दिव्य अनुभूति :
वह पेड़ों के पास मिलेगी

सृजन
और लोकोपयोगी प्रेरणा :
वह पेड़ों के पास मिलेगी

तो चलो
पेड़ों के पास
और चिपक जाओ उनसे

पेड़ विहीन
दुनिया में
तुम्हारे जीने का
क्या अर्थ?

यह धरती

हल-बैल चाहती थी
धरती यह
गंवाकर अपने जंगल
और जीवों को
रातों-रात
लेकिन इसकी उपजाऊ मिट्टी
निकाल ले गयीं मशीनें
फिर दुनिया-भर के कूड़ों ने
इसमें आश्रय पाया
और जब यह पट गयी
पूरी तरह से
तब कंक्रीट आया
और छा गया इस पर
आसमान तक
जहां से इसे कभी बादल निहारते थे
और अपना प्यार बरसाते थे
आते-जाते

आज यह धरती
बाहर से जगमगा रही है
लेकिन अंदर से
कसमसा रही है
जहां एक ठोस अंधेरे के सिवा
कुछ नहीं है

–केशव शरण

❑ *एस 2/564, सिकरौल, वाराणसी-221002, मो. 9415295137*

संपादकीय

अपनी प्रासंगिकता प्रस्तुत करें

चुनाव की गतिविधियां 15 मई, 2014 तक खतम हो जायेंगी। पार्टियों का लोगों के साथ संवाद बनाने का दौर ठंडा पड़ने लगेगा।

तो क्या लोगों के साथ संपर्क/संवाद को जारी रखने की जरूरत कम हो जायेगी। यदि राजसत्ता की दृष्टि से देखें तो ऐसा ही लगेगा। लेकिन अगर लोकसत्ता की दृष्टि से देखें तो स्थिति इससे उलटी होगी। पिछले दो वर्षों से जो लोग चुनाव की दृष्टि से तैयारी कर रहे थे, वे लोगों के असंतोष को, सत्ता में जाने के लिए एक सीढ़ी की तरह इस्तेमाल कर रहे थे। ऐसे दौर में जो लोकसत्ता निर्माण के काम से जुड़े थे, उनका काम कम दिख रहा था।

अब जब चुनाव की प्रक्रिया खतम होने के करीब है, लोकसत्ता निर्माण के काम से जुड़े लोगों को तत्काल और अधिक सक्रिय होने की जरूरत है। क्योंकि लोगों के साथ संवाद बनाये रखने पर, लोगों में इस बात को गहराई से स्थापित किया जा सकेगा कि चुनाव की प्रणाली लोगों को सक्रिय-भागीदारिता से विलग करने वाली प्रक्रिया है।

वोट देने के बाद लोकतंत्र में जनता क्या करे! इसका जवाब राजनीतिक पार्टियों के पास नहीं है। इसका जवाब उनके पास है जो लोकसत्ता के निर्माण के काम से जुड़े हैं।

ऐसे समय में पहला कदम यह होगा कि लोक-संगठन के निर्माण का कार्य, गांव-गांव, मुहल्ले-मुहल्ले में शुरू कर दिया जाये। और यह कहा जाये कि हमारे सक्रिय बने रहने की आवश्यकता निरंतर रहती है। प्रतिनिधि के ऊपर प्रभावी एवं नैतिक नियंत्रण तभी बना रह सकेगा, जब लोक-संगठन सक्रिय बने रहेंगे तथा लोगों की नैतिक शक्ति के रूप में कार्य करते रहेंगे।

चुनाव की प्रतिस्पर्द्धा के दौर में लोगों के बीच जो कृत्रिम विभाजन खड़ा करने का प्रयास किया गया था, उसे भी खतम करने का माध्यम ये लोक संगठन बन सकेंगे। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता के वाहक बनने का कार्य भी ये लोक संगठन करते रहेंगे।

अहिंसक-क्रांति की दृष्टि से जन आंदोलन एवं वैकल्पिक रचना का कार्य को भी अभी ही गति देना चाहिए। इससे यह स्पष्ट किया जा सकेगा कि पिछले दो वर्षों के दौरान कौन से आंदोलन बदलाव लाने के लिए थे तथा कौन से आंदोलन सत्ता प्राप्ति की एक सीढ़ी मात्र थे।

जनता में यह स्पष्ट करना चाहिए कि हमने केवल प्रतिनिधि चुनने का काम नहीं किया है। हमने राष्ट्र-निर्माण के लिए अपना संगठन भी बनाया है। राष्ट्र-निर्माण के लिए हमने अपना जो संकल्प बनाया है, उस संकल्प के अनुसार जन आंदोलन करते रहना हमारा लोकतांत्रिक अधिकार भी है तथा संवैधानिक दायित्व भी है। हम भारत के लोग दृढ़ निश्चय के साथ अपना लक्ष्य निर्धारित भी करते जायेंगे तथा उसके अनुसार कार्य भी करते जायेंगे। इन कार्यों को करने का माध्यम भी लोक संगठन होंगे। इस प्रकार वर्तमान प्रशासन तंत्र से भिन्न लोक के अपने स्वायत्त प्रशासन का माध्यम ये लोक संगठन बनते जायेंगे तथा धीरे-धीरे लोक आधारित स्वायत्त प्रशासन का दायरा बढ़ाते जायेंगे।

हमारी जिम्मेदारी अभी इसलिए भी बड़ी है क्योंकि पिछले दो वर्षों के दौरान देश भर में हजारों ऐसे नौजवान आगे आये थे, आंदोलनों से जुड़े थे, ताकि जनता की परिवर्तन करने की ताकत मजबूत हो। पार्टियों को चुनाव की राजनीति ने इन्हें हतप्रभ कर दिया है। परिवर्तन के लिए इनकी ऊर्जा कहां लगे, ये समझ नहीं पा रहे हैं।

यदि अहिंसक क्रांति से जुड़े आंदोलन-कारी, जनता के परिवर्तन करने की ताकत को मजबूत करने के लिए आंदोलन को गति देने के कार्य जिम्मेदारी से तत्काल शुरू कर देंगे तो इन सभी युवकों/युवतियों को भी अपने मकसद से जुड़ने का माध्यम मिल जायेगा।

लोकतंत्र में राजनीतिक पार्टियों का एवं राजसत्ता के माध्यम से काम करने का एक स्थान है। लेकिन उससे भी महत्त्वपूर्ण कार्य लोक-संगठनों का एवं लोकसत्ता के निर्माण का है। लोक संगठनों एवं लोकसत्ता के निर्माण के अभाव के कारण ही भारत में लोकतंत्र का निरंतर क्षरण होता चला गया। लोकतंत्र में लोक की महत्ता एवं लोक की सम्प्रभुता को स्थापित करने का काम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, अन्यथा लोकतंत्र टिकेगा नहीं।

अतः जरूरी है कि चुनाव के तत्काल बाद देश भर की लोकतांत्रिक—गैर-चुनावी एवं अहिंसक शक्तियां एकजुट हों, अपने अगले कदम की रूपरेखा बनायें तथा लोक संगठन निर्माण व लोकसत्ता निर्माण के काम में जुट जायें।

जब पार्टियां सरकार बनाने के जोड़-तोड़ के काम में लग रही हों, उनके कार्यकर्ता घर बैठे सत्ता से जुड़ने का सपना देख रहे हों, उस दौर को जनता के लिए निराशा का दौर न बनने दें। बल्कि यही वह समय है, जब हम सच्चे लोकतंत्र के लिए अपनी प्रासंगिकता प्रस्तुत कर सकेंगे।

बिमल कुमार

आत्ममंथन की अनिवार्यता

❑ न्या. चन्द्रशेखर धर्माधिकारी

सत्रह साल न्यायमूर्ति के पद पर रहने के परिणामस्वरूप मैं गांधी विचार पर आधारित संस्थाओं से और व्यक्तियों से अलग हो गया था। नागपुर छोड़कर सन् 1978 में मैं मुम्बई आ गया। इसलिए यह दूरी और बढ़ गयी। उस पद पर से विदा होने के बाद पुनः इन संस्थाओं से, गांधीवादी या गांधीजनों से जुड़ा। मैं दादा धर्माधिकारी का पुत्र हूं। निवृत्तमान न्यायमूर्ति भी हूं। इतना ही नहीं महाराष्ट्र शासन ने मुझे विद्यमान न्यायमूर्ति तथा माननीय मंत्री का दर्जा प्रदान किया है, क्योंकि मैं महिला विषयक कानून और उसके अमल व सुधार संबंधी समिति का अध्यक्ष हूं। मैं पशु विषयक कानून में सुधार और उनके सुचारु रूप से अमल हेतु उच्च न्यायालय द्वारा गठित समिति का भी अध्यक्ष हूं। इतना ही नहीं मैं सर्वोच्च न्यायालय के आदेश द्वारा स्थापित दहाणु तालुका पर्यावरण समिति का भी अध्यक्ष हूं।

इस कारण और दादा का पुत्र होने के नाते मेरी सामाजिक जीवन में तथा शासन व्यवस्था में कुछ प्रतिष्ठा और उपयोगिता है। शायद इसीलिए गांधीवादी संस्थाओं ने मुझसे नजदीकी दर्शायी और मुझे कुछ संस्थाओं में पद भी मिले। मैं गांधी स्मारक निधि का अध्यक्ष रहा। गांधी द्वारा स्थापित राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का भी अभी तक अध्यक्ष रहा। सेवाग्राम आश्रम से जुड़ा हूं। आज 87 साल की उम्र में मेरा भ्रम टूट गया है। यही नहीं मेरे कई श्रद्धा स्थान नष्ट व भ्रष्ट हो गये हैं। मैं महसूस कर रहा हूं कि मरकर भी पूर्ति न हो सकने जैसी हानि हुई है।

गांधी ने स्वयं कहा था कि गांधीवाद जैसा कोई उपक्रम उन्होंने प्रस्तुत नहीं किया है। गांधी गांधीवादी नहीं थे वे सिर्फ गांधी थे। अंग्रेजी में एक प्रसिद्ध वाक्य है, 'मैं नहीं जानता कि महान लोगों को उनकी महानता के लिए कैसे दंडित किया जाये। वैसे उन्हें दंडित करने के लिए उन्हें अनुयायी दे दो।' वैसे भी शिष्य गुरु का उत्तराधिकारी ही नहीं होता बल्कि वह उनकी उत्तरक्रिया का अधिकारी भी होता है। वह जब गुरु की ऊंचाई पर नहीं चढ़ सकता तब गुरु को अपने नीचे के स्तर पर उतारकर लाता है और फिर अन्य गुरुओं के शिष्यों से झगड़ता है, विवाद करता है। ऐसे लोग लकीर के फकीर होते हैं और उनका अपना स्वतंत्र चिन्तन नहीं होता। फिर वे संस्थाएं चाहे आश्रम ही क्यों न हों, मठ बन जाती है। उनमें चिन्तन प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। उसमें सिर्फ मठाधीश रहते हैं और वे सिर्फ मठ की संपत्ति का जतन करने का ही काम करते हैं। उनके लिए पद और संस्था की संपत्ति ही अहम होती है। यही उनके योगक्षेम का साधन भी होता है।

विरासत चलाने की प्रवृत्ति अंत में संपत्ति की निजी मिल्कियत जैसी चाह में बदल जाती है। सत्ता और संपत्ति के पद से जुड़े होने के कारण इनमें पदों के लिए चुनाव होने लगते हैं। इन संस्थाओं से लंबे समय तक दूर रहे मुझ जैसे लोगों ने माना था कि ये तो सेवा करने वाली संस्थाएं हैं तो फिर इन संस्थाओं में चुनाव क्यों होते हैं? हमारी यह धारणा कि चुनाव तो सत्ता-सम्पत्ति पाने के लिए ही होते हैं, गलत निकली। इससे संस्थाओं, उनके पदाधिकारियों या गांधीवादियों का शायद कोई नुकसान नहीं हुआ, लेकिन हम जैसे सामान्यजनों के श्रद्धास्थान समाप्त हो गये।

आज हम संक्रमणकाल से गुजर रहे हैं। पुराने मूल्य या पुरानी प्रतिष्ठा एवं पुराने श्रद्धास्थान ढहते हुए समाप्त हो रहे हैं। ये संस्थाएं और हम लोग नये मूल्य और नये श्रद्धास्थान निर्मित करने में सर्वथा असफल रहे हैं। अब गांधी की संस्थाओं को भी विचारक या चिन्तकों की जरूरत नहीं है। उन्हें तो अब बस इस्टेट मैनेजरों की ही आवश्यकता है। मैंने महसूस किया है कि इन संस्थाओं की मनोवृत्ति इस्तेमाल करो और फेंक दो जैसी ही है। इसलिए इनमें सदस्यता तो है लेकिन आपसी संबंध नहीं हैं। आचार्य कृपलानी ने कहा था, 'गांधीवालों में पारस्परिकता और परस्पर स्नेह वृत्ति का अभाव है। पारस्परिकता में कई बार साथी के पाप को भी अपना पाप मानना पड़ता है। महत्त्वाकांक्षा और अहंकार त्यागना पड़ता है। सेवा का अहंकार भी तजना पड़ता है। मुझमें अहंकार नहीं है, इस अहंकार को भी त्यागना पड़ता है। आग्रह में विवेक आवश्यक होता है। आपस में इतना स्नेह जरूरी है कि अहंकार भी न रहे।'

इस दृष्टि से लगता है कि अन्य संस्थाओं की तरह सर्वोदयी संस्थाओं में भी खामियां हैं। गांधी की संस्थाओं से अपेक्षा थी कि वह केडर निर्माण करने की संस्था रहेगी। वह लोकसत्ता तथा लोकतंत्र के लिए आदर्श बनेंगे। लेकिन आज तो शायद कोई भी संस्था इस पैमाने पर खरी नहीं उतरती। दादा धर्माधिकारी ने 1968 में सर्वोदयी तथा गांधीजनों के कार्यकर्ता शिविरों में कहा था कि आज तो सारी की सारी संस्थाएं कलुषित और भ्रष्ट हो गयी हैं। ये संस्थाएं शाहजहां, दि पैलेस बिल्डर की तरह इमारतों का निर्माण सबसे अधिक मात्रा में कर रही हैं और वही सबसे बड़ा रचनात्मक कार्य माना जा रहा है। विश्वविद्यालय से लेकर हर जगह गांधी भवन बन रहे हैं। लेकिन वहां विश्व भी नजर नहीं आता और न ही गांधी तथा राष्ट्रभाषा समिति में राष्ट्र।

आज संस्थाओं में पद धारण कर पद और संस्था की गरिमा वृद्धि करने वाले लोग नहीं हैं, उल्टा पद ही उन्हें सँभाल रहा है और सामाजिक प्रतिष्ठा दिलवा रहा है। पदाधिकारी अब संस्था में गांधी विचार के प्रक्षेपण केन्द्र या श्वसन केन्द्र नहीं रहे। वे तो सिर्फ उपदेश केन्द्र बने हैं और उपदेश तो हमेशा दूसरों के लिए ही होता है। हम→

श्रमदान से उपजा बौद्धिक चिन्तन

❑ डॉ. सुगन बरंठ

रोज के श्रमदान के दौरान हरीश ने कहा कि आज हम दरी धो डालते हैं। तीन मित्रों द्वारा ठेले पर रखकर दरी मंच पर लायी गयी। मंच और दरी दोनों की लंबाई 15 गुना 30 फीट की है। उसे बिछाकर पाइप से पानी डाला, आधा किलो कपड़े धोने का पावडर डाला और नारियल की झाड़ू से उसे फैलाया। फिर पलटी मारी और नीचे की ओर से बुहारी से रगड़ा। ब्रश से रगड़कर गहरे से मैल निकाला। हरीश ने हम सबको बताया कि 15 साल बाद दरी धुल रही है। यह सर्वोदय कार्यालयों में बिछाई जाने वाली खादी भंडार की वजनदार मोटी दरी थी। वह दो लोगों से उठाई जाने वाली भी नहीं थी और न बार-बार धुल सकने वाली। मैल थामने की क्षमता खतम होकर उसने अपना मूल रंग भी छोड़ दिया था। हर बार उसे ऊपर से बुहारी से साफ कर या कभी आधी-आधी मोड़कर नीचे से धूल निकालकर काम चलाया जाता रहा।

भिगोने के बाद हमारे बीच चिन्तन चला कि वस्तु एक ही जगह रखी रहे तो क्या होता है। आदमी भी एक ही स्थान पर टिका हो (मन से या शरीर से भी) और चिन्तन न हो तो आदमी के विचारों में भी ऐसी ही महीन धूल जम जाती है, वह मूल रंग से भटक जाता है। इसलिए शायद लोकसेवक के लिए चरैवती की बात शास्त्रों में कही है। कितना साम्य है हममें और दरी के बीच! हम तीन लोग पचपन और पैंसठ साल के आसपास के और बाकी युवा मित्रों का ढाई घंटा तक उस दरी को साफ करते-करते चिन्तन चल रहा था।

हरीश ने युवा मित्र वैभव जोशी के साथ यह बात शुरू की कि दरी क्या बोलेगी। वह बोला, दरी कहेगी ''खबरदार। मैं इस संस्था में सबसे पुरानी हूं। मुझे बंग साहब, सिद्धराजजी, बसंतराव बोंबटकर, आढ़ेजी, धर्माधिकारीजी, जमना बेन...ऐसे अनेक महानुभावों का सत्संग मिला है। मैंने इस सभागृह को सँवारा है। हरीश और हीरामन इस बात को जानते हैं। मालेगांव के सभी पुराने लोगों से पूछो। यह शिवाजी उम्रदराज है पर अभी आया और आपकी उम्र से ज्यादा साल मेरे इस सभागृह में गुजरे हैं। मेरे मैल की चिन्ता छोड़ो अपनी देखो। तुम्हें लज्जा नहीं आती मेरी तुलना मनुष्य से करते हो।...'' और फिर दरी संयम छोड़कर और अपनी उम्र भूलकर न जाने क्या-क्या बोली।

उसके पास कहने को एक ही बात थी कि वह कितनी पुरानी है। उसने इस सभागृह को कैसे सँवारा है। उसके पास सभागृह को सजाने के कौशल के अलावा कुछ नहीं था, न हो सकता था। लेकिन अपनी इस उम्र में वह भाषा का संयम खो बैठी। उसे पता चल गया कि अब यही नये लोग नई दरी लायेंगे। उसका दुख यही था कि उसकी उपयोगिता, उसका राज खतम हो रहा है। वह अंतरमुख हो अपने भीतर बसे मैल को देख ही नहीं पा रही थी। उसे इस बात की पीड़ा थी कि उसके मैल पर विमर्श किया जा रहा है। वह भूल गयी कि ये लोग उसका सूक्ष्म मैल निकालने में मदद कर रहे थे। लेकिन उलटे वह तो उन्हीं पर बिफर गयी।

यह चिन्तन चल ही रहा था कि दूसरे मित्र संजय जोशी आ गये। उन्होंने कहा कि यह दरी अब कालबाह्य हो चुकी है और अब इसका बोझ ढोने, इसे साफ करने में समय, शक्ति गँवाने के बजाए हम कुछ और करें। उन्होंने जानकारी दी कि इस दरी का अपने यहां आगमन ही गलत रास्ते से हुआ। यह जब लायी गयी तब स्थानिक चुनाव थे और तब के अध्यक्ष को पता था कि एक

→लोग सभी से जिसमें राजनीतिक दल भी शामिल हैं से आचारसंहिता की अपेक्षा करते हैं। लेकिन मेरा जीवन ही मेरा संदेश है, कहने वाले महात्मा की संस्थाओं में कोई आचारसंहिता दिखायी नहीं देती। कुछ सर्वोदयी संस्थाओं ने सदस्यता के लिए संपूर्ण खादी पहनने की जो शर्त रखी थी, उसे भी अब रद्द कर दिया है। वहां का भ्रष्टाचार क्षम्य माना जाता है, और वह शिष्टाचार बन गया है। हम जैसों की यही वेदना है। लम्बी जिन्दगी आशीर्वाद नहीं, अभिशाप भी है। इस उम्र में इतनी ठेस पहुंची है कि जीने की आकांक्षा ही समाप्त हो जायेगी।

ऐसी परिस्थिति का उत्पन्न होना हमारे चिन्तन का विषय है, इसकी एक वजह तो शायद यह है कि ये संस्थाएं व्यक्तिनिष्ठ हो गयी हैं। इसमें भी सत्ता एवं संपत्ति का मोह इतना बढ़ गया है कि गांधी की अपरिग्रह और विश्वस्त भावना ही समाप्त हो रही है। चालाक और धूर्त बुद्धिजीवियों का महत्त्व इन सभी संस्थाओं में बढ़ रहा है। ये संस्थाएं अब स्वावलंबी नहीं रहीं। शासकीय दान की प्रक्रिया में देने वाला दानी और लेने वाला नादान बनता है और कार्यकर्ता नौकर। उनके लिए संस्था योगक्षेम का साधन बनता है। इतना ही नहीं संस्था के घर भी खुद के लिए बनते हैं। इसी पदाकांक्षा, सत्ताकांक्षा और संपत्तिकांक्षा के कारण गांधी विचारकों पर चलने वाली तथाकथित संस्थाएं गांधीत्व और सतीत्व भी बेच रही हैं। वहां विचार भी मिशन के बदले कमीशन में परिवर्तित हो रहा है। इनमें आत्मग्लानि पनप रही है। हम तो मानते थे कि समाज और व्यवस्था परिवर्तन के लिए ये संस्थाएं प्राणभूत हैं। संस्कृत में एक वचन है :

''अन्य क्षेत्रे कृतं पापं, तीर्थ क्षेत्रे विनश्यति,
तीर्थ क्षेत्रे कृतं पापं, वज्रलेपो भविष्यति।''

अन्यत्र कहीं पाप करोगे तो गंगा में धो सकेंगे। लेकिन गंगा में ही पाप करेंगे, तो कहां धोएंगे? गांधी संस्थाओं के बारे में मेरा यही यक्ष प्रश्न है। जिसका उत्तर मैं गांधी संस्थाओं और गांधीजनों से चाहता हूं। ❑

चुनावी उम्मीदवार ने यह दरी भेंट दी है। इसके बावजूद इसे रख लिया। अतः इसकी बातों पर ज्यादा गौर न करें। जिसका स्वयं का चरित्र भ्रष्ट हो वह बोले तो बोलने दो।

युवा मित्र वैभव ने कहा, 'ताऊ! (मुझे सारे स्थानीय युवा ताऊ कहते हैं) यह उसी तरह है, जिस तरह किसी आदमी के मन में अहंकार की धूल जम जाती है और वह अंतर्मुख न होकर दूसरों को दोष देने में समय और ऊर्जा गँवाता है। कितना साम्य है मानव और दरी में।'

मैंने उसे बताया 'बेटा, पांच-छः सौ साल पहले तुलसीदासजी कह गये हैं 'जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार। संत हंस गुण गहई पय परिहर बाही बिसार'। दरी जड़ और हम चेतन। गुण-दोष तो दोनों में रहेंगे ही। हमें ध्यान अच्छे काम में लगाना है। सकारात्मक बातें लेकर आगे बढ़ाना चाहिए।

तब दूसरे युवा विजय का सवाल था, 'ताऊ! अगर तुलसीदासजी इतने पहले कह गये तो मनुष्य क्यों अंतर्मुख होकर नहीं सोचता?' मैंने कहा, 'बेटा! इसका भी जवाब तुलसीदासजी ही दे गये हैं। वे जानते थे कि विवेक से मनुष्य हंस की तरह दूध और पानी अलग-अलग करने की कला हासिल कर सकता है। आदमी भला हो फिर भी वह ऐसा कर नहीं पाता, क्योंकि, 'अस विवेक जब देऊ विधाता, तब दोष गुण ही मनुराता। काल सुबाहु करम बरी आई। भलेहु प्रकृति पर चुकत भलाई।।' अर्थात् ईश्वर जब विवेक देता है तब मनुष्य दूसरों के (और स्वयं के भी) दोष त्यागकर गुण लेता है, यह सच है। फिर भी भले आदमी को भी समय, संगत, कर्म वैसा नहीं करने देते।

बहस आगे बढ़ती गयी। एक ने कहा, काल हमारे हाथ में नहीं। दूसरे ने कहा, यह सच अधूरा है। प्राप्त समय का पल-पल का नियोजन और सदुपयोग तो हमारे हाथ में है। इस अर्थ में काल भी तो हाथ में नहीं, सभी ने उसकी बात में सहमति दिखायी। तब दूसरे ने कहा, बात संगत की तो वह पूरी तरह हमारे ही हाथ में है। हम किसके साथ बैठते-उठते हैं, यह तो हमारे हाथ में है। तब चौथे ने कहा, यह बात भी अधूरी है। क्योंकि अगर संगत से विचार शुद्धि न हो तो वह संगत किस काम की? मैंने कहा, इसे विनोबा ने कहा है, आत्मा का आरोहण और आत्मा का अवरोहण यानी नीचे जाना। ऐसी संगत जो हमारा आत्मबल न बढ़ाये, वह संगत किस काम की और जो मात्र भोग, सत्ता, संपत्ति, प्रतिष्ठा के विषय सिखाये वह संगत किस काम की? चर्चा से साफ हुआ कि संगत कैसी हो।

चर्चा चली कि अगला शब्द है कर्म। कर्म किसे कहें? वह कैसे होता है? बात इस पर आ रुकी कि कर्म वाणी, मन एवं शरीर द्वारा होता है। फिर जिसे जो सूझा वैसे बताते गए लोग। तब मैंने कहा, यदि स्पष्ट है कि कर्म, वाणी, मन और काया द्वारा होता है तो यहां भी विनोबा हमारी मदद करते हैं। वे कहते हैं, 'आत्मा के अवरोहण के लिए संगत में वाणी, मन और शरीर का तप करना होगा। काया के लिए यज्ञ यानी त्याग, मन के लिए प्रसन्न वृत्ति, सौम्यत्व, आत्म चिन्तन, संयम व शुद्ध भावना रखें। यही मन और वाणी के लिए उन्होंने कहा है, 'हितार्थ बोलें, सत्य-प्रेम से न दुख हो ऐसे। स्वाध्याय करें नित्य यही है तप वाणी का।'

इस तरह चर्चा पूरी हुई और दरी साफ करने का श्रमदान भी। ❑

पुस्तक परिचय

अनायास शब्दांकन : विनोबा, संपादन : बालविजय, प्रकाशक : खादी मिशन सेवा ट्रस्ट के लिए रामदास शर्मा, मैनेजिंग ट्रस्टी, गोपुरी, वर्धा, वर्ष-2014, सहयोग राशि : 125 रुपये।

संत विनोबा का पूरा जीवन साधनामय था। कठिन-से-कठिन साधना में भी सहजता की पराकाष्ठा थी। जेल में पत्थर तोड़ने में शरीर के घाव की पीड़ा सहज में स्वीकार किया। देवघर मंदिर-प्रवेश के समय लगी चोट, गंभीर-से-गंभीर बीमारी को भी उन्होंने सहजता से स्वीकार किया। शरीर के अंग जब धीरे-धीरे काम करना बंद किया उसे भी सहजता से स्वीकार कर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते गये—उसे महागुहा में प्रवेश माना। उनके द्वारा व्यक्त शब्द सूत्र रूप में व्यापक अर्थ के होते थे। पुस्तक के संपादक श्रद्धेय बाल विजयजी विनोबाजी के सचिव थे और उनके साथ छाया की तरह रहते एवं विनोबा की हर क्रिया के प्रत्यक्षदर्शी हैं। पुस्तक में 'सेवक' शब्द का उपयोग किया गया है। वे तीन सेवक थे श्री बाल विजयजी, श्री गौतम बजाज एवं श्री जयदेव भाई। प्रस्तुत पुस्तक श्री बाल विजयजी की देन है जो संत विनोबा के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर की जीवन-यात्रा के समय की अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करती है। यह ऐतिहासिक दस्तावेज है जो खास अवधि में संत विनोबा के जीवन, विचार एवं मार्गदर्शन को प्रस्तुत करता है। मनुष्य का बाह्य शरीर किस प्रकार बदलता है, 'अकर्म' की ओर जाता है, इसका शास्त्रीय विश्लेषण सूत्र रूप में 'अनायास शब्दांकन' में देखा, पढ़ा और समझा जा सकता है। संपादन में एक स्थान पर कहा गया है, 'विनोबा एक फारसी शेर की याद दिलाते थे—

'लब्ब बंदो-चश्म बंदो-गोश बंदो
मुँहबंद-आंख बंद-कान बंद'

गांधीजी के तीन बंदर। दो तो मैं बन गया हूं आंखें भी करीब 13 घंटे बंद रखते हैं।'

संपादक ने स्पष्ट किया है कि करीब एक साल (8.9.1964 से 19.10.1965) तक छोटी नोटबुक, जिसे उन्होंने 'खरड बही' नाम दिया, उसमें लिखे संवाद को पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया गया है। विनोबा ने इसे व्यर्थ लेखन कहा लेकिन स्थितप्रज्ञ साधक के निरर्थक शब्द भी अर्थपूर्ण, बोधप्रद, स्वभाव दर्शक और मार्गदर्शक होते हैं। संत तुकाराम ने कहा ही है, ''संतों का या श्रेष्ठ पुरुषों का अनायास बोलना भी उपदेश होता है।''

पुस्तक इस कारण पठनीय है कि संत विनोबा उन दिनों ब्रह्मविद्या मंदिर, पवनार में रहे। उनसे मिलने वालों में देश भर से आये वरिष्ठ जन जिनमें विचारक, साधक, सेवक, राजनेता एवं अन्य विशिष्ट जन थे। उनके साथ सूत्र रूप में किये गये संवाद में प्रश्नों के उत्तर सूत्र रूप में इस पुस्तक में पढ़ने को मिलता है।

(पुस्तक वाणी मंदिर समिति, बी-190, यूनिवर्सिटी मार्ग, बापूनगर, जयपुर-14 से प्राप्त की जा सकती है।) **–डॉ. अवध प्रसाद**

फासीवाद के लौटने की आशंका

❑ भारत डोगरा

विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भ से देखें तो फासीवाद को इटली में वर्ष 1919 में मुसोलिनी के नेतृत्व में आरम्भ हुए सत्ता हथियाने के उन प्रयासों से जोड़ा जाता है जिनके आधार पर इस देश में एक नेता पर केन्द्रित तानाशाही स्थापित हुई थी। यह ऐसी तानाशाही थी जो समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की शक्तियों के विरुद्ध थी। लेकिन इसे अर्थव्यवस्था व समाज के ताकतवर तबकों का समर्थन प्राप्त हुआ। बाद में कुछ ऐसी ही प्रवृत्तियों का और भी प्रबल प्रसार जर्मनी में हिटलर व नाजी पार्टी के नेतृत्व में हुआ व इसे नाजीवाद का नाम दिया गया।

लेकिन फासीवाद की पहचान इस विशिष्ट ऐतिहासिक पहचान से कहीं आगे जाती है। मुसोलिनी व हिटलर के नेतृत्व में विश्व इतिहास के असहनीय अत्याचार हुए। उनकी व्यापक जानकारी के बाद भी अनेक देशों में फासीवादी प्रवृत्तियां आगे बढ़ती रहीं। दुख है कि ये प्रवृत्तियां उन देशों में भी एक सीमा तक बढ़ीं जिन्होंने हिटलर और मुसोलिनी के विरुद्ध सबसे बड़े व निर्णायक युद्ध लड़े थे। आज भी यूरोप के अनेक देशों में ऐसे अनेक राजनीतिक दल नये सिरे से शक्तिशाली हो रहे हैं जो फासीवादी सोच के बहुत नजदीक माने जाते हैं। यही वजह है कि हाल के समय में भी फासीवाद की चर्चा सुर्खियों में बनी रही है। इसी वजह से इस बहस को इटली और जर्मनी के विशेष ऐतिहासिक दौर से आगे चलकर अधिक व्यापक संदर्भ में समझना जरूरी है, हालांकि यह बात अपनी जगह है कि जर्मनी और इटली के उस दौर का अध्ययन हमेशा महत्त्वपूर्ण बना रहेगा।

व्यापक संदर्भ में देखा जाये तो फासीवाद वह प्रवृत्ति है जो बढ़ती समस्याओं और अनिश्चय के दौर में समस्याओं के वास्तविक कारणों से ध्यान हटाते हुए, कुछ तबकों पर नाहक ही सारा दोष मढ़ते हुए मजबूत सत्ता व नेता के माध्यम से ऐसे भ्रामक समाधान सुझाती है जो लोकतंत्र, समता व भाईचारे के विरुद्ध है। चूंकि फासीवाद में समस्याओं के मूल कारणों से व उनके लिए जिम्मेदार स्वार्थों से ध्यान हटाया जाता है अतः ऐसे शक्तिशाली स्वार्थी तत्त्वों का समर्थन इसे मिलता है। ऐसे तत्त्व इस तलाश में रहते हैं कि उनके लिए यह उपयोगी भूमिका कौन-सी फासीवाद ताकतें व नेता सबसे असरदार ढंग से निभा सकते हैं।

सच्चाई तो यह है कि फासीवाद के प्रसार के लिए अनुकूल स्थितियां आज विश्व के बहुत से देशों में मौजूद हैं। इसकी वजह है आर्थिक विषमता और आर्थिक संकट का विस्तार। आर्थिक संकट के सही कारणों से ध्यान हटाने के लिए शक्तिशाली, साधनसंपन्न स्वार्थ मौजूद हैं व वे इसके लिए उपयुक्त राजनीतिक ताकत व नेता खोज रहे हैं।

लेकिन दूसरी ओर यह भी सच है कि लोकतांत्रिक प्रवृत्तियों के विश्व स्तर पर प्रसार के साथ अब फासीवाद प्रवृत्तियां उतने खुलेपन से नहीं आ पाएंगी, जितना कि मुसोलिनी या हिटलर के समय में संभव था। वैसे सच तो यह है कि फासीवाद के उस क्लासिक दौर में भी लोक-लुभावने नारों व वायदों से फासीवाद ने अपनी वास्तविक प्रवृत्तियों को कम-से-कम आरम्भिक दौर में काफी हद तक छुपा लिया था। उदाहरण के लिए जर्मनी में नाजी पार्टी ने सर्वप्रथम अपने को समाजवादी जर्मन मजदूर पार्टी कहा था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जर्मनी के साथ हुए अन्याय को इस पार्टी ने सफलता से एक मुद्दा बनाया था। परंतु बाद में इस पार्टी ने इतने अत्याचार किये कि सम्पूर्ण मानवता काँप उठी।

आज के संदर्भ में देखें तो फासीवादी ताकतें अपने कार्यक्रमों को, फिर चाहे वे कितने भी अनुचित हों, सही दिखने वाला आवरण देने के लिए कहीं अधिक सक्रिय रहती हैं। इसके लिए इन ताकतों से जुड़े बुद्धिजीवी बहुत जोड़-तोड़ से ऐसा एजेंडा तैयार करते हैं जो व्यापक स्तर पर मान्य हो सके। इसके लिए गठबंधन राजनीति का भी उपयोग किया जाता है। लेकिन उनका प्रयास यह रहता है कि बड़े गठबंधन में भी फासीवादी ताकतें अधिक शक्तिशाली बनी रहें।

बदलते समय के अनुकूल किये गये परिवर्तनों के बावजूद फासीवाद की मूल प्रवृत्तियां अपनी जगह बनी हुई हैं और संभवतः बनी भी रहेंगी। लोकतांत्रिक पद्धति से कार्य करना इसकी मजबूरी हो, परंतु तानाशाही प्रवृत्तियों, अधिनायकवाद व व्यक्ति पूजा की ओर झुकाव फासीवाद में आज भी बना हुआ है। इसी तरह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कुछ समुदायों को निशाने पर लाने की प्रवृत्ति भी बनी हुई है। फासीवाद मूलतः लोकतंत्र विरोधी, समता विरोधी व बंधुता विरोधी है। यह आज भी उतना ही सच है जितना कि यह इसके क्लासिकल दौर में था।

फासीवाद को रोकने के साथ यह पहचाना जाना जरूरी है कि फासीवाद केवल एक रूप में नहीं आता है। उदाहरण के लिए, भारतीय संदर्भ में फासीवादी ताकतों का उदय सांप्रदायिक ताकत के रूप में भी हो सकता है व अन्य किसी रूप में भी। अतः फासीवाद के विरोध का भी कोई एकसूत्रीय एजेंडा नहीं हो सकता। अपितु देश व दुनिया की समस्याओं के सही व संतुलित समाधान का कार्य जितना व्यापक स्तर पर आगे बढ़ेगा व लोगों में इसकी समझ बढ़ेगी, फासीवादी ताकतें उतना ही कमजोर होंगी।

फासीवाद के विरुद्ध खड़े होने वाले लोगों की भूमिका बहुत उपयोगी व महत्त्वपूर्ण है।→

महिला सशक्तीकरण में शिक्षा की भूमिका

❑ जागृति राही

अभी-अभी 8 मार्च बीता है। माह भर महिला दिवस मनाने की रस्में निभायी गयीं। देश में चुनाव का माहौल भी है लेकिन महिला और शिक्षा मुद्दा नहीं बन पा रहे हैं। वजह कहीं हमारे इतिहास में है। हम पढ़ते आये हैं वैदिक काल में औरतों को शिक्षा का अधिकार था, धीरे-धीरे शिक्षा से औरतों की दूरी बढ़ी, उन्हें वंचित किया गया। शिक्षा का अर्थ गुरुकुल में जाकर शास्त्रों का अध्ययन था, पेशे, न्याय-व्यवस्था से जुड़ी शिक्षा या फिर सैनिक के रूप में अस्त्र-शस्त्र का प्रशिक्षण। लेकिन सच तो यह है कि हमारे देश के इतिहास में शिक्षा आम लोगों के लिए नहीं थी। अंग्रेजी शासनकाल में स्कूली शिक्षा का प्रसार हुआ और पुनर्जागरण काल में सामाजिक सुधारकों, पश्चिमी शिक्षा से प्रभावित प्रबुद्ध वर्ग और छुआछूत-अस्पृश्यता के खिलाफ चले आंदोलन के नेताओं, उसके पश्चात् स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महिलाओं की शिक्षा पर ध्यान दिया गया। जिसमें डॉ. अम्बेडकर, ज्योतिबाफूले, सावित्री बाई फूले, डॉ. जाकिर हुसैन, रामकृष्ण परमहंस, डॉ. एनीबेसेन्ट और क्रिश्चियन मिशनरी का उल्लेखनीय योगदान है। श्री दयानंद सरस्वती, राजाराम मोहनराय जैसे लोगों ने पहल की। सरस्वती शिशु मंदिर एवं मदरसा की शिक्षा व्यवस्था भी फैलनी शुरू हुई, जिसका उद्देश्य एक विशेष तरह की विचारधारा का प्रसार-प्रचार था। गांधीजी की पहल पर देश में चार विद्यापीठों की स्थापना हुई। पं. मदनमोहन मालवीय ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की। ये जो आधुनिक शिक्षा-केन्द्र बने इन्होंने शिक्षा से बड़ी संख्या में महिलाओं को जोड़ा। इनमें हर तबके, हर वर्ग की महिलाएं शामिल थीं। आजादी के बाद हमारे संविधान ने शिक्षा को सुलभ बनाया। स्कूल, कॉलेज खोलना सम्मान का प्रतीक बना। व्यापारी, नेता, बड़े प्रभुत्व वर्ग के लोगों ने शिक्षा के केन्द्र गांव में खोले। इसके बावजूद बड़ी संख्या में महिलाएं, बच्चियां शिक्षा से वंचित रहीं तो उसका कारण हमारी सामाजिक सोच रही। आज भी लड़कियों की पढ़ाई को दूसरे दर्जे का महत्त्व मिलता है। लैंगिक भेदभाव और घरेलू कामों में हिस्सा बँटाने के बोझ ने बच्चियों की शिक्षा में बाधाएं खड़ी कीं। प्राथमिक शिक्षा के बाद मिडिल और कॉलेज तक की शिक्षा ग्रहण करने वाली महिलाओं का प्रतिशत लगातार घटते हुए क्रम में दिखता है। हमारी दोहरी मानसिकता में समाज के एक वर्ग की बच्चियों के विवाह के लिए पढ़ाई को जरूरी मानता है। दूसरी तरफ यही वह वर्ग है जहां लड़की ज्यादा पढ़-लिख लेगी तो शादी में मुश्किल आएगी, इस मानसिकता से डर कर बीच में ही पढ़ाई छोड़वा देता है। शिक्षण संस्थाओं की कमी और शिक्षा की गुणवत्ता एक बड़ी समस्या है। आज भी हमारे देश में शिक्षा की राजनीति खड़ी नहीं हो पायी, न ही यह चुनावों में मुद्दा बन पाता है। शिक्षा और स्वास्थ्य दोनों क्षेत्र उपेक्षित हैं। जिनसे सीधे-सीधे देश की बहुसंख्यक जनता का हित और विकास जुड़े हैं। आज भी शिक्षा के लिए आंदोलन करने वालों की मांगें अनसुनी हैं। हम जी.डी.पी. का 10 प्रतिशत भी शिक्षा और स्वास्थ्य पर खर्च नहीं कर पा रहे हैं। शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए तमाम समितियां बनीं, अध्ययनों की रिपोर्ट आयी, उनकी सिफारिशों पर कभी अमल नहीं किया गया। मैकाले की शिक्षा-पद्धति से हम आज भी प्रभावित हैं। शिक्षा का उद्देश्य केवल नौकरी दिलाना होगा तो शिक्षा की उपयोगिता सशक्तीकरण के लिए क्या रह जायेगी, यह एक बड़ा सवाल है। क्या हमारी शिक्षा का उद्देश्य अच्छे इनसान बनाना हो पाया है? क्या व्यक्तित्व निर्माण की दिशा में हमारी शिक्षा-पद्धति पूरा योगदान कर रही है? शिक्षा केवल डिग्री हासिल करने का उपक्रम बन कर नहीं रह गयी है? यदि महिलाएं शिक्षित होकर आत्मनिर्भर नहीं बनतीं या फिर अपनी जिन्दगी के फैसले लेने में सक्षम नहीं होतीं तो क्या हमें इस पर सोचने की जरूरत नहीं है? शिक्षा यदि उनकी सोच को वैज्ञानिक दृष्टि को विस्तृत नहीं करती तो शिक्षा द्वारा महिला सशक्तीकरण कहां हो रहा है? महिला के सशक्तीकरण में शिक्षा की भूमिका की सार्थकता इन्हीं अर्थों में है। यदि महिलाएं जाति-पाति, धर्म-सम्प्रदाय, भाषा-क्षेत्र की संकीर्णता में बँधी हैं। यदि महिलाएं आज भी घर के बाहर निकलने से डरती हैं और अपने फैसले खुद नहीं कर पातीं तो वे किन अर्थों में सशक्त हैं! कुछ महिलाओं के नौकरी में आ जाने या पदों पर बैठ जाने को महिला सशक्तीकरण कैसे कहा जाय? आज आरक्षण के बावजूद पंचायतों में महिलाओं के चुने जाने के बाद भी ग्रामसभा की बैठकें

→परंतु उनकी एक बड़ी कमी यह है कि वे अपने आधार को संकीर्ण रखते हैं व आपस में बहुत झगड़ते रहते हैं। इस तरह ये लोग फासीवाद के लिए एक बड़ी चुनौती उत्पन्न नहीं कर पाते। प्रायः छोटे-छोटे गुटों या दलों में बँट कर ये कहते हैं कि केवल हम ही हैं जो फासीवाद के वास्तविक विरोधी हैं। इस तरह उनकी ताकत बहुत बँट जाती है व कम हो जाती है। जबकि जरूरत इस बात की है कि फासीवाद के शक्तिशाली उभार के दौर में उन्हें अपनी व्यापक एकता बनानी चाहिए। उनकी इस कमजोरी के कारण वे लोग हाशिए पर जा रहे हैं जबकि फासीवादी ताकतें शक्तिशाली समर्थकों का लाभ उठाकर तेजी से आगे बढ़ती जा रही हैं। *(सप्रेस)*

नहीं होतीं। राजनीति में महिलाओं का प्रतिशत बेहद कम है। कभी भी 20 प्रतिशत से ज्यादा संसद और विधानसभाओं में प्रतिनिधित्व नहीं हो पाया है। उम्मीदवार बनने के लिए भी योग्यता से ज्यादा किसी बड़े नेता के परिवार से रिश्ता होना जरूरी है।

आज भी 75 प्रतिशत महिलाओं के रक्त में हिमोग्लोबिन की कमी है। 45 प्रतिशत लड़कियों की शादी 18 साल से कम उम्र में ही हो जाती है। मातृ शिशु मृत्यु दर ज्यादा है और पांचवीं कक्षा के बाद एक तिहाई लड़कियां पढ़ाई छोड़ देती हैं। दहेज देने पर पढ़ी-लिखी लड़की भी शादी करने के लिए चुपचाप राजी हो जाती है। चुप्पी तोड़ी नहीं जाए, अन्याय, शोषण का प्रतिरोध न किया जाय, संगठित होकर अपनी ताकत दिखायी न जा सके तो कैसे माना जाये सशक्तीकरण को। प्राथमिक शिक्षा और आँगनवाड़ी में सबसे ज्यादा महिलाएं हैं, इन दोनों का हाल खराब है। इस देश में क्यों महिलाओं की यूनियनें नहीं हैं और अगर हैं तो पुरुष ही उनके पदाधिकारी हैं। सम्पत्ति का हक सिर्फ 1 प्रतिशत महिलाओं के पास है। महिलाओं का कोई वोट बैंक नहीं है। उनका वोट प्रतिशत भी कम है। सशक्तीकरण को हम किस पैमाने पर नापें? मोबाइल, स्कूटी के इस्तेमाल या आधुनिक कपड़े पहन लेना सशक्तीकरण की प्रक्रिया का पूरा हो जाना नहीं है। हमें यह भ्रम छोड़ना पड़ेगा कि आधुनिक साज-सज्जा, बाजार की चमक-दमक से प्रभावित होकर हम सशक्त हो रहे हैं। आज की शिक्षा ने हमें घर से बाहर आने का, सीखने का मौका दिया है। उसका पूरा सदुपयोग हमें करना अभी बाकी है। हमें अपने आप से सवाल पूछना होगा कि क्या हमें जो अवसर मिल रहा है, हमने उसे अपने आसपास की अन्य महिलाओं को दिलाने का प्रयास किसी भी वक्त किया? क्या हम अपने कॅरियर के अलावा अपने गांव, शहर, मोहल्ला और देश की समस्याओं और यहां हो रहे बदलावों के प्रति सचेत हैं? क्या हम स्वयं वोट देने जाते हैं? दूसरी महिला को उसके लिए प्रेरित करते हैं? क्या हमें फिल्मों, टीवी, विज्ञापनों में औरतों के शरीर के इस्तेमाल से परेशानी नहीं होती है? कहीं अनजाने में हम भी उसी दौड़ में शामिल तो नहीं हो रहे हैं, जिसमें औरत को केवल एक देह के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। क्या हमें महिलाओं के हक में उठाए जा रहे कदमों, कानूनों, योजनाओं की जानकारी है? क्या हमने कभी संगठित होकर किसी महिला के साथ हो रही बदसलूकी का, रूढ़ियों, परंपराओं का मुखर विरोध किया? यदि इन सब प्रश्नों के उत्तर 'हां' में हैं तो निःसंदेह हम सशक्त हो रहे हैं। हमारी शिक्षा केवल किताबें रट कर परीक्षा पास कर लेने तक सीमित नहीं है। संक्षेप में कहा जाय तो शिक्षा से हम इस देश का सशक्त नागरिक बनने की दिशा में बढ़ें। आज इस देश की 90 प्रतिशत महिलाएं असंगठित क्षेत्र में अपना योगदान देती हैं। सुबह 5 बजे से रात के 12 बजे तक काम करने वाली महिला से जब पूछा जाय कि आप क्या करती हैं तो वे कहेंगी कुछ नहीं, घर में ही रहते हैं। तो शिक्षा से सशक्तीकरण का अर्थ स्वाभिमान, आत्मसम्मान और पहचान है। यदि हम आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हैं तो हमारा स्वाभिमान जिन्दा रहेगा और यदि हमने अपनी क्षमता का उपयोग कर अपनी पहचान कायम की तो हम सम्मान अर्जित करेंगे, दूसरों से और स्वयं से भी। यदि ये सब हमारी शिक्षा में मिल रहा है तो ही हम सशक्त नारी हैं। उम्मीद है कि आगे आने वाले वक्त में महिलाएं संगठित होंगी। शिक्षा के माध्यम से एक नयी अहिंसक समाज की स्थापना करेंगी। बदलाव की शुरुआत शांतिपूर्ण ढंग से हो चुकी है। आने वाले दो दशकों में भारत का समाज इसका असर देखेगा। ❑

शहीदों को श्रद्धांजलि

गांधी स्मारक भवन, चंडीगढ़ में दिनांक 23.3.2014 को भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरु के शहीदी दिवस पर गांधी स्मारक निधि पंजाब, हरियाणा व हिमाचल प्रदेश एवं आचार्यकुल, चंडीगढ़ तथा सक्सेसर ऑफ फ्रीडम फाइटर एसोसिएशन की ओर से शहीदी दिवस समारोह मनाया गया।

मुख्य अतिथि जस्टिस सूर्यकांत ने शहीदों को श्रद्धांजलि देते हुए कहा कि स्वतंत्रता संग्राम में शहीदों ने अपनी कुर्बानी देकर हमें आजाद भारत दिया है, जिसमें हम स्वतंत्र सांस ले रहे हैं। जिस भारत का सपना इन्होंने देखा था, आज भी उस मुकाम पर नहीं पहुंच पाया है।

महेशदत्त शर्मा ने समारोह की अध्यक्षता करते हुए कहा कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और सरदार भगत सिंह के लिए स्वतंत्रता केवल मात्र साधन थी साध्य नहीं थी, जिसके द्वारा सारी मानवता को शोषण, अन्याय और गरीबी से मुक्ति के लिए रूढ़िवादी व्यवस्था में बुनियादी एवं आमूल परिवर्तन के लिए संघर्ष किया।

इस अवसर पर जिन साहित्यकारों को सम्मानित किया गया, उनमें वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. चन्द्रत्रिखा, माधव कौशिक, डॉ. उमा शर्मा, डॉ. राकेश सचदेवा, डॉ. शशिप्रभा, डॉ. सादगी भारती, सुशील हसरत नरेवली, उर्मिल कौशिक सखी, नवीन नीर व कुमारी जिज्ञासा शामिल हैं।

समारोह में 35 स्वतंत्रता सेनानी एवं उनके परिवारों, 10 साहित्यकारों एवं 13 विशिष्ट कार्य करने वालों को सम्मानित किया गया। सम्मेलन में हरियाणा, पंजाब एवं चण्डीगढ़ की संस्थाओं के सदस्यों ने भाग लिया। कार्यक्रम का संचालन पुनीता बावा ने किया। बच्चों ने देशभक्ति के गीत एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम किये। प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी एवं कवि चंद्र की 1919 में लिखी पुस्तक 'जेल-गीत' का लोकार्पण भी किया गया।

–देवराज त्यागी

श्रीलंका : तमिल समस्या के वैश्विक निहितार्थ

❑ मेधा पाटकर

श्रीलंका में तमिल समुदाय पर हो रहे अत्याचारों को रोकने के साथ ही साथ उनकी जमीनों, घरों, बस्तियों और गांवों को बचाने की रणनीति बनाने हेतु लंदन में ब्रिटिश संसद 'हाउस ऑफ कॉमन्स' के एक सभागार में 31 जनवरी को एक वैश्विक बैठक का आयोजन किया गया था। इस बैठक में ब्रिटेन के विभिन्न दलों के सांसदों के अतिरिक्त श्रीलंका, भारत, अमेरिका, जर्मनी, बांग्लादेश आदि देशों के सैकड़ों नागरिक उपस्थित थे। श्रीलंका के सांसद सुरेश प्रेमचंदन व तमिल नेशनल अलायंस के प्रतिनिधि भी इस बैठक में शामिल थे। इसके अलावा तमिल सिंहली समुदाय के मध्य हुए नस्लीय युद्ध से सर्वाधिक प्रभावित त्रिकोनामाली जिले से आए नागेश्वर भी इस सभा में मौजूद थे। ब्रिटिश तमिल फोरम के अनेक उच्चशिक्षित सदस्य भी इस बैठक में शरीक हुए।

बैठक की पूर्व संध्या पर मालूम पड़ा कि यूरोपियन यूनियन अपनी मानवाधिकार परिषद् की मार्च, 2014 में होने वाली आगामी बैठक जिसमें श्रीलंका की सरकार के खिलाफ विरोध प्रस्ताव लाए जाने की आशा है, को अमेरिका द्वारा रोके जाने की पूरी तैयारी कर ली गयी है। इससे आयोजनकर्ताओं में थोड़ी निराशा अवश्य फैली, लेकिन वे इस सम्मेलन की वैश्विक भागीदारी से बहुत आशान्वित जान पड़े। लंदन के हवाई अड्डे से मुझे टैक्सी से लाने वाले तमिल नागरिक शशि का कहना था कि बहुत क्रूर अत्याचारों वाले युग के बाद युद्धविराम तो लागू हो गया है, लेकिन विवाद अभी समाप्त नहीं हुआ है। उन्हें इस सम्मेलन से काफी उम्मीदें थीं। गौरतलब है कि कई वरिष्ठ अधिवक्ता और चिकित्सक इसी उम्मीद को लिये आयोजन में स्वयंसेवक बने थे।

सम्मेलन के प्रारम्भ में दो मिनट मौन रखकर संघर्ष के दौरान मृत लाखों व्यक्तियों को श्रद्धांजलि दी गयी। गौरतलब है कि सन् 2002 से प्रारम्भ हुए युद्ध के अंतिम दौर में ही तकरीबन 1,50,000 ऐसे लोग मारे गये थे, जिन्हें युद्ध से प्रभावित होने से बचाने के लिए श्रीलंका सरकार द्वारा सुरक्षा क्षेत्र में रखा गया था। लेकिन बाद में बड़ी निर्ममता के साथ बमबारी कर उन्हें मार डाला गया। इतना ही नहीं इस दौरान विद्यालयों, घरों और अस्पतालों पर भी बमबारी की गयी थी। गौरतलब है कि सन् 2006 में युद्ध विराम लागू होने के पहले मृत व्यक्तियों की गिनती तो आज तक सामने आयी ही नहीं है। इस प्रक्रिया में लाखों विस्थापित हो गए और आज वे भारत से लेकर जर्मनी तक तमाम देशों में बसे हुए हैं। इसके बावजूद इस घृणित अपराध की सजा भुगतने को शासक वर्ग तैयार नहीं है।

इराक युद्ध से लेकर अफगानिस्तान युद्ध तक सभी में वैश्विक ताकतें खुले रूप में शामिल थीं। ऐसे में वहां हुई हत्याओं के लिए जिम्मेदार ठहराने की हिम्मत किसी में भी नहीं थी। लेकिन श्रीलंका में हुए हत्याकांडों की आवाज दुनिया भर में रहने वाले तमिलों ने जोर-शोर से उठाई। संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव के साथ कार्य कर चुके ब्रूसे फेनेने ने श्रीलंका के सेनाप्रमुख एवं राष्ट्राध्यक्ष महेन्द्र राजपक्षे को आरोपी बनाकर अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। राजपक्षे के अमेरिकी व श्रीलंका दोनों देशों के नागरिक होने के नाते उन्हें अमेरिकी न्यायालय वर्ष 2007 में हुए जातीय नरसंहार के अपराध में दोषी ठहरा सकते थे। किन्तु संयुक्त राष्ट्रसंघ के राजनयिकों को दी जाने वाली छूट की आड़ में उन्हें सुरक्षा कवच पहना दिया गया।

श्रीलंका विवाद में यह तय हो गया कि इस सुन्दर व समृद्ध टापू देश को सिंहली समाज द्वारा केवल 'अपना' घोषित करना ही एक तरह से आतंक का पर्याय था। ऐसा ही दर्प भंडरनायके के शासन के दौरान सिंहली भाषा कानून की घोषणा के समय भी सामने आया था। लेकिन इस सबके पहले से भूमि के मुद्दे पर बहुसंख्यक सिंहली, तमिलों की खिलाफत करते आये थे। तमिल बहुसंख्यक क्षेत्रों व उत्तर श्रीलंका में भूमि-सुधार के नाम पर हुए भूमि बँटवारे में वहां सिंहली परिवारों को बसाया गया। यह एक प्रकार की जबरदस्ती ही थी। भारत में जिस प्रकार अंग्रेजों ने सन् 1935 में भूमि कानूनी बंदोबस्ती प्रारम्भ की थी ठीक वैसी ही श्रीलंका में भी तोड़ो (फूट डालो) और राज करो की नीति अपनायी गयी। इससे तमिल प्रदेश में जातीय समीकरण बदलने लगा और असंतोष भी बढ़ा। सन् 1951 में किसान संगठन ने शांतिपूर्ण आंदोलन कर तमिल चेतना जागृत की और अपनी सामाजिक व सांस्कृतिक विविधता का हवाला देते हुए अल्पसंख्यकों की रक्षा का मामला उठाया। लेकिन बावजूद इसके इस समस्या पर ध्यान नहीं दिया गया। परिणाम यह हुआ कि सांख्यकीय स्थितियां बदलती गयीं। सन् 1901 से 2012 के दौरान जहां पूर्व में मिलों की जनसंख्या में 537 प्रतिशत की वृद्धि हुई वहीं सिंहलियों की जनसंख्या में 3991 प्रतिशत की वृद्धि हुई। ऐसा ही तिकोनामाली व अन्य स्थानों पर भी हुआ है।

भारत के उत्तरपूर्वक की स्थिति भी यहां से काफी समानता वाली है। हाल ही में महाराष्ट्र में भी प्रांतवाद एक मुद्दा बन गया है। जाहिर है कि ऐसे मामलों से जातीय संघर्ष में वृद्धि

होती ही है। इस प्रक्रिया में भूमि व प्राकृतिक संसाधन ताकतवर वर्ग के हाथ में पहुंच जाता है। श्रीलंका में तीन दशकों तक चले युद्ध ने हमें यही तो सिखाया है। दोनों पक्षों द्वारा सन् 2006 के युद्ध विराम को तोड़े जाने को भारत जैसे बड़े पड़ोसी देश की मध्यस्थता भी नहीं रोक पायी। अपनी विफलता के बावजूद हमने युद्ध का समर्थन नहीं किया, लेकिन राजपक्षे सरकार द्वारा श्रीलंका के संविधान में किये गए 13वें संशोधन की आड़ में 17 सदस्यीय समिति की सिफारिशों को जबरन अमल में लाने के कारण न केवल सत्ता का केन्द्रीकरण हुआ, बल्कि तमिलों के स्वनिर्धारण की मांग को युद्ध से कुचलने का मौका भी मिल गया। इस महाभयंकर हत्याकांड की तुलना किसी अन्य घटना से नहीं की जा सकती। वैसे भी इस फासिस्ट व नस्लवादी हिंसा की तुलना असम्भव ही है। दुनिया भर में हो रही भर्त्सना व संयुक्त राष्ट्रसंघ के पूर्व अधिकारियों, तमिल समुदाय व तमिल राजनेताओं के बढ़ते आक्रोश के मद्देनजर भारतीय प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह राष्ट्रमंडल सम्मेलन में भाग लेने श्रीलंका नहीं पहुंचे। यहां विदेशमंत्री ने भारत का प्रतिनिधित्व किया था। लेकिन इस सम्मेलन में युद्ध अपराधों पर न तो कोई बात हुई और 1500 व्यक्तिगत मामलों (युद्ध अपराध संबंधी) पर भी कोई कार्यवाही नहीं हो पायी।

गौरतलब है श्रीलंका में अब 'भूमि' का मामला तूल पकड़ता जा रहा है। इसमें राज्य द्वारा भूमि हड़पना और तमिल समुदाय को जीविका से वंचित रखना एक नयी चुनौती है और यह हिंसा का नया स्वरूप है। युद्ध के दौरान हजारों एकड़ जमीनें (10500 एकड़) सैनिक शिविर के नाम पर अधिग्रहित कर ली गयी। इस दौरान सुदूर क्षेत्रों में तथाकथित कल्याणकारी गांव व केन्द्र बनाये गये। जाफना में 6500 एकड़ निजी जमीन सैन्यशिविर हेतु ले ली गयी। निजी पट्टों वाली इन जमीनों पर अब किसान नहीं बल्कि सैनिक खेती करते हैं और उपज बेचकर कमाई करते हैं। इतना ही नहीं खुली पड़ी जमीनों पर बिना अधिग्रहण कानून का पालन करे चीन व अन्य देशों की कंपनियों को पूंजी निवेश के नाम पर स्पेशल इकॉनामिक जोन (विशेष आर्थिक क्षेत्र) में लाने का न्यौता पिछले पांच वर्षों से लगातार दिया जा रहा है। राजनीति के इस सैन्यीकरण को कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार पूंजीवाद और नयी आर्थिक नीति केन्द्रित बाजारवाद, एक बार पुनः तमिल क्षेत्रों को लील रहा है। आज भी डेढ़ से दो लाख सैनिक उत्तरी तमिल प्रदेशों में जमे हुए हैं। यह स्थिति की गंभीरता व इसका एकपक्षीय होना दर्शाता है। इसी के समानांतर ताप विद्युतगृहों व मेगा सिटी जैसी अनेक योजनाएं तमिल बसाहटों और गांवों को खतम करने की साजिश ही है। लंदन सम्मेलन में इस प्रकार की हिंसा की खुले तौर पर निन्दा की गयी।

सैनिक शिविरों और सैन्यीकरण के अलावा विकास परियोजनाओं के नाम पर भूमि की बंदरबाट श्रीलंका के तमिल क्षेत्र में ही नहीं बल्कि दक्षिण एशिया सहित दुनियाभर के देशों में आम हो गयी है। किसान, मजदूर, मछुआरे सभी, इस विस्थापनवादी व विषमतावादी विकास मॉडल से हैरान हैं। भारत के तमिलनाडु में श्रीपेरेम्बदूर, शिरुमंगलम जैसे अनेक जिलों में 1500 से 2000 एकड़ तक जमीन बलपूर्वक अधिग्रहित कर वहां पर ब्रिटेन और यूरोप की कंपनियों को लाया जा रहा है। इसमें अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय एजेंसियों का हित भी जुड़ा रहता है। तमिल व सिंहली समुदाय दोनों ही आपसी संघर्ष में अंततः घाटे में रहेंगे और महावेली जैसी बड़ी सिंचाई योजनाएं सिंहली व तमिलों में से किसी को भी बक्शेगी नहीं। अतएव श्रीलंका की तमिल जनता के प्रति शांति, न्याय व जनतंत्र के दृष्टिगत ही व्यवहार किया जाना चाहिए।

तमिल नेशनल अलायंस के प्रतिनिधि मान रहे हैं कि महज चुनावी राजनीति से इस स्थिति से निपटा नहीं जा सकता। इस हेतु विकेन्द्रित शासन प्रणाली की आवश्यकता है। हम सबको अपने वंचित वर्ग को संभालना व बचाना होगा। किसी समुदाय को वहां की भूमि, प्रकृति व संस्कृति ही बचाती है। तमिलों को पूर्ण मताधिकार प्रदान किये जाने के साथ ही उनकी भूमि को भी बचाना ही होगा, तभी उनकी जीविका और जीवन चल सकता है। वैश्वीकरण, कंपनीकरण व उदारीकरण के इस मॉडल को स्थानीयता के आधार पर चुनौती देनी होगी तथा वैकल्पिक विकास व पुनर्वास का कार्य भी साथ-साथ करना होगा। गौरतलब है कि पुनर्निर्माण आज श्रीलंका की सबसे बड़ी चुनौती है। लंदन में हुई इस बैठक में विभिन्न राष्ट्रों, व्यवसायों और पृष्ठभूमि से आये व्यक्ति इस बात पर एकमत थे कि इस चर्चा को मूर्तरूप देना अनिवार्य है। ❑

अहिंसा के रूप में निर्बलता

"जिसे मैं अहिंसा मान बैठा था, वह वास्तव में सच्ची अहिंसा नहीं थी, बल्कि अहिंसा के नाम पर निरी निर्बलता ही थी। कहने का मतलब यह कि अहिंसा कभी निष्फल नहीं होता। हाँ, अहिंसक निष्फल अवश्य हो जाते हैं। किन्तु मैं उतनेभर से रुक नहीं जाता। 'जगे तभी से सबेरा' के अनुसार मैं पिछली भूलों को सुधारकर आगे बढ़ना ही ठीक मानता हूँ। आदमी इसी तरह आगे बढ़ सकता है।"

–महात्मा गांधी

जी.एम. बीज : भूमि और खेती की बर्बादी

❑ वसंत फुटाणे

खरपतवार (तण) नाशी सुरक्षित हैं, मिट्टी के स्पर्श से ये निष्क्रिय हो जाते हैं। गांव के कृषि सामग्री विक्रेता अकसर ऐसा कहते हैं, किसान उन पर विश्वास भी करता है। जरूरत हो या न हो आधुनिकता तथा सुविधा के कारण भी खरपतवारनाशी रसायनों का इस्तेमाल तेजी से फैल रहा है। जी. एम. बीजों के खुले वातावरण में परीक्षण के लिए केन्द्र से भी हरी झंडी दिखा दी गयी है। सवाल उठता है जी. एम. बीजों पर देश-दुनिया में विवाद होने के बावजूद केन्द्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्री वीरप्पा मोइली जल्दबाजी में ऐसा कदम कैसे उठा पाये? क्या इससे (कृषि रसायनों से होने वाला) प्रदूषण घटेगा और जनता को सुरक्षित भोजन मिलेगा?

अभी-अभी दक्षिण अफ्रीका में विज्ञापन मानक प्राधिकरण ने रेडीओ (702) के जी. एम. बीजों के विज्ञापनों पर रोक लगा दी। 'जैव सुरक्षा हेतु अफ्रीकी केन्द्र' की शिकायत पर यह कार्यवाही की गयी। मोन्सेंटो अपने स्वयं के वेबसाइट के अलावा किसी अन्य द्वारा स्वतंत्र रूप से अपने दावे की पुष्टि नहीं करा सकी है। दक्षिण अफ्रीका में एक प्रदर्शनकारी ने सवाल पूछा, अगर जी. एम. सुरक्षित है तो, हालैंड, ग्रीस, स्विट्जरलैंड, मैक्सिको, पुर्तगाल, हवाई, हल्जीरिया, नार्वे, न्यूजीलैंड, मैडीरा, सऊदी अरब, ऑस्ट्रेलिया, हंगरी, बल्गारिया और दक्षिण ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में इस पर पाबंदी क्यों लगायी गयी है?

गौरतलब है कि चीन ने छः माह पूर्व अमेरिका को जी. एम. मक्का खरीदने से मना कर दिया था और फ्रांस ने मोन्सेंटो के मॉन (810 जी. ई. मक्का प्रजाति) पर प्रतिबंध कायम रखा है। खरपतवारनाशी रसायनों का प्रयोग सुलभ करने हेतु जी. एम. बीजों का विकास किया जा रहा है। मोन्सेंटो कंपनी द्वारा विकसित राउंडअप उत्पाद में ग्लायफोसेट का संबंध समय से पूर्व प्रसव तथा गर्भपात, हड्डी तथा अन्य प्रकार के कैंसर व डी.एन.ए. के नुकसान से जुड़ता है। राउंडअप के कारण 24 घंटों के भीतर मनुष्य की मांसपेशियां मर जाती हैं। खेती में अल्प मात्रा में उपयोग होने पर भी मानव एवं पशुओं दोनों पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है।

ग्लायफोसेट मानवी शरीर की हार्मोन निर्माण और व्यवस्था में तोड़फोड़ करता है। अमेरिकी सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम अवशेष सीमा से 800 गुणा कम होने पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। मेंढक, कछुआ, केकड़े जैसे उभयचारी जीवों के लिए राउंडअप जानलेवा है। कृषि में इस रसायन के इस्तेमाल के कारण मेंढकों की संख्या 70 प्रतिशत कम हुई है।

श्रीलंका सरकार ने भी हाल ही में मोन्सेंटो के 'ग्लायफोसेट' खरपतवारनाशी पर प्रतिबंध लगाया है। खेतिहर मजदूरों में किडनी की बीमारियां बढ़ने के कारण वहां यह कदम उठाया गया। लखनऊ के विष विज्ञान संस्था के अध्यक्ष के अनुसार खरपतवारनाशी का संबंध कैंसर के साथ जुड़ता है। पंजाब सरकार के सर्वेक्षण के अनुसार भटिण्डा तथा आसपास के जिलों में जहां आधुनिक कृषि होती है वहां एक भी कुएं का पानी पीने लायक नहीं बचा है।

पंजाब के गांव-गांव में कैंसर के मरीज पाये जाते हैं। वहां 'कैंसर ट्रेन' भी चलती है। महाराष्ट्र में नागपुर के पास भी कैंसर के इलाज हेतु दो बड़े निजी अस्पताल खुलने जा रहे हैं। नागपुर में निजी अस्पतालों की संख्या बहुत है। मध्य प्रदेश के जबलपुर से अमरावती चलने वाली रेलगाड़ी में नागपुर के अस्पतालों में आने वाले मरीजों की संख्या काफी अधिक होती है। इटारसी होकर मध्य भारत में चलने वाली इस गाड़ी का भविष्य भी कैंसर ट्रेन जैसा ही हो सकता है।

गांव-गांव में कंपनियों का अपना प्रचार होता है। गांव का कृषि सामग्री विक्रेता किसानों का मार्गदर्शक, साहुकार तथा उपज खरीददार सब कुछ होता है। बुआई के पिछले मौसम में इन्हीं के माध्यम से मोन्सेंटो ने कपास की नयी जी. एम. प्रजाति आर. आर. एफ. पिछले दरवाजे से बेची। इन बीजों को मान्यता न होने के बावजूद बड़े पैमाने पर सब दूर इनका कारोबार चला जिससे राउंडअप खरपतवारनाशी का इस्तेमाल आसान हुआ। आर.आर.एफ. कपास बीज इसी हेतु विकसित किये जा रहे हैं। किसान को इसमें सुविधा दिखती है, खेती में समय पर (उचित दामों में) मजदूर उपलब्ध नहीं होने पर यह अच्छा विकल्प लगता है। किन्तु इन रसायनों के काले पक्ष से बिलकुल अनभिज्ञ होना भी इनके प्रयोग में आने का एक महत्त्वपूर्ण कारण है।

सरकार का भी इन कंपनियों पर वरदहस्त है तभी तो वीरप्पा मोइली ने जल्दबाजी में जी.एम. बीजों के खुले वातावरण में परीक्षण की अनुमति प्रदान की। पूर्व पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश तथा श्रीमती जयंती नटराजन ने इसकी अनुमति नहीं दी थी। इस मामले की सुनवाई उच्चतम न्यायालय में भी चल रही है, इसके बावजूद मंत्रीजी ने यह कमाल कर दिखाया है। उच्चतम न्यायालय द्वारा गठित विशेषज्ञ समिति तथा संयुक्त संसदीय समिति दोनों इन परीक्षणों के पक्ष में नहीं हैं। देश के स्वतंत्र वैज्ञानिक भी इन परीक्षणों के प्रति अपनी चिन्ता प्रधानमंत्री को जता चुके हैं।→

मुक्ति का पहला कदम

❑ चिन्मय मिश्र

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किन्नर या हिजड़ा समुदाय को मान्यता प्रदान किये जाने के पक्ष में दिया गया निर्णय ऐतिहासिक ही नहीं क्रांतिकारी भी है। यह स्थापित करते हुए कि लैंगिक पहचान को मान्यता न देना संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 21 का उल्लंघन है। न्यायालय ने यह भी कहा है कि ऐसे समूह में आने वाले व्यक्तियों (हिजड़ों) को तीसरे लिंग के रूप में एक कानूनी आधार मिलेगा और उन्हें सभी कानूनी व संवैधानिक अधिकार भी प्राप्त होंगे। इसी के साथ सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा है कि संविधान के अनुच्छेद 15 और 16 में प्रयोग में लायी गयी भावना 'लिंग' सिर्फ पुरुष या स्त्री तक सीमित नहीं है, बल्कि इसकी आकांक्षा उन लोगों को भी शामिल करने की है जो कि न तो पुरुष हैं और न ही स्त्री। इतना ही नहीं इसे महज सामाजिक या स्वास्थ्य का मुद्दा न बताते हुए मानवाधिकार के हनन की संज्ञा दी है।

यहां पर एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्न खड़ा होता है कि इस समुदाय को अपना वैधानिक हक पाने के लिए संविधान की स्थापना के बाद भी छह दशकों तक इंतजार क्यों करना पड़ा। साथ ही इस निर्णय ने भारतीय संसद की कार्यप्रणाली और प्रतिनित्वि पर पनुः सवालिया निशान लगा दिया है। संसद के द्वारा इस मामले का संज्ञान में न लिया जाना हम सबकी नीयत को भी शंका के दायरे में लाता है। वैसे भारत का दलित समुदाय का एक बड़ा वर्ग आज भी शारीरिक व मानसिक त्रासदी भोग रहा है। उस पर अत्याचार समाप्त होने का नाम नहीं ले रहे। लेकिन उसे संविधान प्रदत्त अधिकार प्राप्त हैं। यह अलग बात है कि वे उस तक पहुंच ही नहीं पा रहे हैं।

वहीं हिजड़ा समुदाय की स्थिति तो और भी दयनीय है। उन्हें तो शायद मनुष्य की श्रेणी में रखने में ही हमारा समाज कतरा रहा है। वे सिर्फ शारीरिक व मानसिक शोषण के ही शिकार नहीं हैं बल्कि उन्हें सार्वजनिक तौर पर मजाक और घृणा का पात्र बना दिया गया है। किसी भी सार्वजनिक स्थल पर उनके कपड़े उठाकर उन्हें जलील करना अब अपराध नहीं मनोरंजन की श्रेणी में आ गया है। कई पुलिस थानों में जब वे रिपोर्ट करने जाते/जाती हैं तो उन्हें अपने निजी अंगों को पुलिस वालों को दिखाना पड़ता है। यह अत्यंत घृणास्पद प्रक्रिया है और किसी व्यक्ति में स्थायी रूप से हीनता और ग्लानि भर देने को पर्याप्त है।

संभवतः इसी के मद्देनजर सर्वोच्च न्यायालय ने नागरिकों को अपने लिंग चयन का अधिकार देकर एक अत्यंत क्रांतिकारी

→फिर भी चुनाव घोषणा के बाद यह निर्णय लिया गया।

महाराष्ट्र ने इन परीक्षणों के लिए पहले ही अपनी हरी झंडी दिखा दी किन्तु अभी मध्य प्रदेश का विरोध और छत्तीसगढ़ की अनुकूलता सामने आयी है, तो जनता क्या समझे? क्या राजनीतिज्ञ सुविधा का खेल खेल रहे हैं? बी. टी. कपास का जहर सुंडी पर बेअसर साबित हो रहा है। ऐसी बीमारियां जो पहले नगण्य थीं वह भी अब नुकसान पहुंचाने लगी हैं। खरपतवारनाशी रसायनों का भी यही हाल होगा। आगे चलकर इन रसायानों से घास (तण) नियंत्रण भी संभव नहीं हो पायेगा। तब हम क्या रसायनों की मात्रा बढ़ाते जायेंगे? अधिक तीव्र रसायनों का इस्तेमाल करेंगे? अंततः यह रास्ता हमें कहां पहुंचायेगा?

सवाल उठता है कि विश्व स्तर पर शुद्ध भोजन तथा सुरक्षित पर्यावरण के लिए जैविक कृषि मान्य होने के बावजूद जी. एम. बीजों का सारी दुनिया में व्यापार फैलाने में मोन्सेंटो तथा अन्य कंपनियां कैसे सफल हो रही हैं? क्या सरकारें भी लालच के मारे अंधी हो सकती हैं? जी.एम. बीज अगर आते हैं तो जैविक कृषि चौपट होना अवश्यंभावी है। जी. एम. का प्रदूषण जैविक फसलों में व देशी बीजों में घुसेगा। एक बार का बिगड़ा बीज पुनः सुधारा नहीं जा सकता। अतः जी.एम. तकनीक अपरिवर्तनीय है। अगर इनसे बचना है तो अभी इसी समय इन्हें रोकना होगा। किन्तु यह जानकारी किसानों तक कौन पहुंचायेगा? गांव का कृषि सामग्री विक्रेता तो कंपनी का एजेंट है। वह जहर का व्यापारी है, तब यह कैसे होगा। लेकिन पढ़ा-लिखा ग्राहक यह कार्य जरूर कर सकता है। किसान के दरवाजे पर वह स्वयं पहुंचे, विषमुक्त भोजन की मांग करे, उसके साथ मैत्री का नाता जोड़े तथा उसके सुख-दुख में सहभागी हों। वर्तमान में किसानों तक सही कृषि विज्ञान नहीं बल्कि कंपनी का प्रचार पहुंच रहा है। किसान अपना माल लेकर ग्राहक के दरवाजे पर नहीं जा सकता न ही वह अपना खेत, घर छोड़ सकता है। अतः ग्राहक को ही उसके पास जाना होगा।

आज जैविक कृषि चंद किसानों तक सीमित है। ग्राहकों की पहल से ही वह व्यापक रूप ले सकती है। इसे जनआंदोलन का रूप दिया जाना आवश्यक है तभी जैविक उत्पाद आम आदमी का भोजन बन सकेंगे वरना तो वह निर्यात माल तक ही सीमित रहेंगे।

(सप्रेस)

व मानवीय पहल की है। उनका मानना है कि लैंगिक वरीयता एक मानसिक स्थिति है। इस संदर्भ में उन्होंने याचिकाकर्ता लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी जो स्वयं इसी समुदाय की हैं को उद्धत भी किया है। उनका कहना है कि वह एक पुरुष की तरह पैदा हुआ। सामान्य बालक की तरह बड़ा हुआ। लेकिन वह स्वयं को लड़की मानती थी और स्वयं को लड़कों से अलग रखती थी। उसे कम उम्र से ही घर के भीतर और बाहर यौन प्रताड़ना सहनी पड़ी। उसे सार्वजनिक तौर पर हिजड़ा या छक्का कहा जाता था। न्यायालय का मानना है कि आवेदनकर्ता को यह स्पष्ट है कि उसकी पहचान को मान्यता न देकर राज्य ने भारत के संविधान के तहत प्रदत्त उसके मौलिक अधिकारों का हनन किया है। न्यायालय का कहना है कि 'शल्य चिकित्सा के बाद अपना लिंग परिवर्तन करने वाले के ऊपर निर्भर करता है कि वह अपने लिंग का चयन करे। इस प्रक्रिया में उसके साथ भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।

भारत में तीसरे लिंग, हिजड़ा, किन्नर, तृतीय प्रकृति अरावनी, नपुंसक, छक्का, कोठी, जोगप्पा, शिव-शक्ति जैसे तमाम नामों से पुकारे जाने वाले इस समुदाय के कम से कम 20 लाख लोग निवास करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में इस समुदाय के अतीत को बहुत गंभीरता से रखा है। उनका कहना है कि हिन्दू पौराणिक ग्रंथों व अन्य धार्मिक ग्रंथों में इस समुदाय की सशक्त ऐतिहासिक मौजूदगी दर्ज है। तृतीय प्रकृति और नपुंसक, जैसे विचार वेद व पुराणों के अंतर्भूत हिस्से हैं। रामायण को उद्धृत करते हुए इस निर्णय में लिखा है कि भगवान राम जब 14 वर्ष के लिए अपना राजपाठ छोड़कर वन जा रहे थे तो उन्होंने मुड़कर अपने अनुयायियों से कहा कि सभी 'स्त्री व पुरुष' शहर लौट जायें। उनके अनुयायियों में हिजड़े भी थे, वे उनके इस निर्देश से बँधे नहीं थे। तो उन्होंने उनके साथ ही रहने का निश्चय किया। उनकी श्रद्धा से अभिभूत हो राम ने उन्हें वरदान देते हुए यह शक्ति प्रदान की कि वे पवित्र अवसरों जैसे बच्चे का जन्म या विवाह या कार्य आरम्भ करने के उत्सवों में लोगों को आशीर्वचन देने के अधिकारी होंगे।

महाभारत में अर्जुन और नागकन्या के बेटे अरावन को कुरुक्षेत्र में पांडवों की जीत हेतु देवी काली के समक्ष बलि चढ़ाने का प्रसंग भी है। इसकी एकमात्र शर्त यह थी कि उसे अपनी अंतिम रात विवाहित के तौर पर बितानी पड़ेगी। कोई भी स्त्री एक रात के लिए विवाह नहीं करना चाहती थी। ऐसे में कृष्ण ने मोहिनी नाम की सुंदर स्त्री का रूप धरा और उससे विवाह किया। इसी वजह से तमिलनाडु के हिजड़े स्वयं को अरावन का वंशज मानते हैं और स्वयं को अरावनी कहते हैं। इसी तरह जैन धर्मग्रंथों में 'मनोवैज्ञानिक लिंग' का जिक्र आता है। इस्लामिक विश्व में राज दरबारों के हिजड़ों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भारत में मुगल शासन के दौरान इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

लेकिन अठारहवीं शताब्दी के बाद स्थिति में नाटकीय परिवर्तन आया। ब्रिटिश शासन के दौरान हिजड़ा तृतीय लिंग समुदाय को अपराधी जाति अधिनियम 1871 के अंतर्गत लाकर इस पूरे समुदाय को 'अपराधी' करार देते हुए इनकी जीवनशैली को कमोवेश गैर जमानती अपराध बना दिया गया। इसके अंतर्गत सार्वजनिक तौर पर महिलाओं जैसे कपड़े, जेवर पहनने या सार्वजनिक स्थलों पर नृत्य करने पर उन्हें दो वर्ष तक कारावास में भेजा जाने लगा। इतना ही उनका रजिस्ट्रेशन भी अनिवार्य कर दिया गया तथा उनपर हमेशा ही धारा 377 थोप दी जाती थी। सन् 1860 के आईपीसी की धारा 377 आज 150 वर्षों बाद भी विवाद में है।

गौरतलब है हमारे दो पड़ोसी देशों नेपाल ने सन् 2007 में और बांग्लादेश ने पिछले वर्ष अपने नागरिकों को यह अधिकार प्रदान कर दिया था। जैसा कि हम सभी जानते हैं और निर्णय में भी लिखा है कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 21 संविधान की आत्मा और हृदय दोनों है। यह अनुच्छेद मानव जीवन की गरिमा, व्यक्तिगत स्वायत्तता और निजता आदि की गारंटी देता है। गरिमा का अधिकार, जीवन के अधिकार का अपरिहार्य हिस्सा है और वह सभी मनुष्यों पर एक सा लागू होता है। इसी आधार पर स्वलिंग निर्धारण व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वायत्तता और अभिव्यक्ति का अविभाज्य अंग है तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का द्योतक भी है। न्यायालय ने इन्हें सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़ों की संज्ञा देते हुए सरकार से इन्हें आरक्षण देने को भी कहा है।

हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि सामाजिक जीवन अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं है बल्कि यह व्यक्ति को उसके जीवन की गरिमा और स्वयं के विकास का एक साधन है। इस समुदाय के प्रति समाज का कठोर व निष्ठुर रवैया बदलना टेड़ी खीर है। अरबी में हर्ज का अर्थ होता है अपनी जाति से अलग होना। हिन्दी-उर्दू के मिलन से हिजड़ा शब्द बना है, क्या हम इन्हें पुनः अपनी मनुष्य जाति में शामिल करने का नैतिक साहस दिखा पायेंगे। *(सप्रेस)*

'सर्वोदय जगत'
के सभी सुहृद पाठकों, ग्राहकों, लेखकों व शुभ-चिन्तकों से अनुरोध है कि अपने समसामयिक महत्त्वपूर्ण
आलेख
व क्षेत्रीय कार्यक्रमों की
रपट
पत्रिका के लिए जरूर भेजें।
आपके सहयोग की सादर अपेक्षा है। **–सं.**

टिहरी बांध : अनदेखी कब तक

❑ विमल भाई

माटू जनसंगठन ने उत्तराखंड सरकार को टिहरी बांध विस्थापितों के भूमिधर अधिकार और साथ ही बरसों पुराने विस्थापित स्थलों पथरी भाग 1,2,3 व 4 में शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, सिंचाई व पेयजल के साथ अन्य मूलभूत सुविधाएं तुरन्त पूरी करने की याद दिलाया है।

याद रहे कि टिहरी बांध की गौरव गाथा गा-गाकर बांध कंपनी टिहरी जलविद्युत निगम जो टीएचडीसी के नाम से प्रचारित है उसे और भी कई नये बांधों के ठेके मिल गये हैं। किन्तु पथरी भाग 1,2,3 व 4 हरिद्वार के ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले टिहरी बांध विस्थापितों के मामले 30 वर्षों से लंबित हैं। यहां लगभग 40 गांवों के लोगों को पुनर्वासित किया गया है। यहां 70 प्रतिशत विस्थापितों को भूमिधर अधिकार भी नहीं मिल पाया है।

बिजली, पानी, सिंचाई, यातायात, स्वास्थ्य, बैंक, डाकघर, राशन की दुकान, पंचायत घर, मंदिर, पितृकुट्टी, सड़क, गुल, नालियां और जंगली जानवरों से सुरक्षा हेतु दीवार व तार-बाड़ तक भी व्यवस्थित नहीं है। 20 वर्षों से ये सुविधाएं लोगों को उपलब्ध नहीं हो पायी हैं। यदि कहीं पर किसी तरह से कुछ व्यवस्था बनी भी है तो स्थिति खराब है। स्कूल भी कुछ ही वर्षों पहले बना है वह भी मात्र 10वीं तक है।

प्राथमिक स्कूलों की इमारतें बनी हैं पर अध्यापक नहीं हैं। स्वास्थ्य सेवाएं तो हैं ही नहीं। रास्ते सही नहीं हैं तो निकासी नालियां भी नहीं हैं। यातायात की सुविधाएं भी नहीं हैं। लोगों को मात्र जंगल में छोड़ दिया गया है। अपने बूते पर विस्थापितों ने मकान बनाये हैं।

अभी उत्तराखंड में नये मुख्यमंत्री आये हैं। पूर्व मुख्यमंत्री श्री विजय बहुगुणा ने हर चुनाव के समय टिहरी का मुद्दा उठाया था। उन्होंने कहा था कि वे विस्थापितों के लिए सर्वोच्च आदालत में जायेंगे। यह भी कहा कि राज्य के पास मिलने वाली बिजली के करोड़ों रुपये हैं, उसे क्यों नहीं विस्थापितों के लिए खर्च किया जाता? यह भी तथ्य है कि वे कभी अदालत नहीं आये।

किन्तु जब वे मुख्यमंत्री थे तो भी उन्होंने विस्थापितों के लिए नहीं किया। अब नये मुख्यमंत्री हरीश रावतजी हैं। उनसे यह आशा चूंकि वे जहां से चुनकर आये हैं वहीं टिहरी बांध के विस्थापितों को तथाकथित तरीके से बसाया गया है। उन्हें पत्र दिया गया। चूंकि केन्द्र व राज्य में उन्हीं की पार्टी की सरकार है। वैसे इन कार्यों के लिए टिहरी बांध परियोजना से, जिसमें कोटेश्वर बांध भी आता है, मिलने वाली 12 प्रतिशत मुफ्त बिजली के पैसे का उपयोग किया जा सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय में टिहरी बांध का 22 वर्ष से एन.डी. जुयाल और शेखर सिंह बनाम भारत सरकार वाला केस सुना जा रहा था। सरकारी वकील दलील देते हैं कि टिहरी बांध से बिजली पैदा हो रही है, कोटेश्वर बांध भी बन गया है। पर विस्थापितों की समस्याएं समझी नहीं गयीं, अदालत में भी उलटे-सीधे शपथ पत्र दाखिल किये जाते हैं। इन सबके चलते भागीरथी गंगा समाप्ति के कगार पर पहुंच गयी है। टिहरी बांध की समस्याएं नासूर की भांति लगातार बढ़ती ही रहती हैं। विस्थापित लोग और पर्यावरण इस दर्द को झेलते हैं। जितना दर्द उतना मवाद निकलेगा और उतना ही राजनैतिक दलों को मुद्दा मिलेगा, कंपनी के वकीलों की आमदनी बढ़ती है, पुनर्वास कार्यालय को काम मिल जाता है। समस्या होगी तो हल्ला मचेगा फिर पैसा आयेगा।

टिहरी बांध केस के कारण अरबों रुपये बांध कंपनी को पुनर्वास के लिए देने पड़े। 29 अक्टूबर, 2005 में बांध की झील में पानी भरना चालू हो गया था। जुलाई, 2006 में बांध के उद्घाटन के समय तत्कालीन ऊर्जामंत्री शिंदे ने घोषणा की थी कि पुनर्वास पूरा करेंगे, विस्थापितों को मुफ्त बिजली देंगे, ऐसे वादे किये गये।

बीजेपी की राज्य सरकार ने ही 2010 में रिपोर्ट बनायी कि छूट गए पुनर्वास के लिए पैसा चाहिए। 3 नवंबर, 2011 को उच्चतम न्यायालय ने एक अरब रुपये अपूर्ण पुनर्वास व स्थलों की सुविधाएं पूरी करने के लिए दिलवाये। सब खुश अदालत ने न्याय किया और बांध कंपनी ने कर्तव्य निभाया। पुनर्वास के रुके काम पूरे होंगे। कुछ राजनेता खुश कि चलो पैसा मिला है। काम पूरा होगा। यक्षप्रश्न यह भी है कि राज्य सरकार बांध से मिली मुफ्त बिजली के पैसे को कहां खर्च कर रही है? विस्थापितों की वास्तविक स्थिति खराब है।

उदाहरण के लिए सुमन नगर शुरुआती यानी 1978 के टिहरी बांध विस्थापितों का पुनर्वास स्थल है, हरिद्वार जिले में यहीं से गंगनहर निकलती है। आधा किलोमीटर पर बिना पानी के खेत हैं। लोग कहते हैं हमें पानी नहीं है तो हमें मजबूरन जमीन बेचनी ही पड़ेगी। बिजली आती नहीं है हमारे तार में, फैक्टरी वाला बिजली ले लेता है। हमें बिजली भी नहीं, पीने का पानी गंदला है, सूखने पर थोड़ा पीला हो जाता है।

गंगनहर से दिल्ली व पश्चिमी उत्तर प्रदेश को 200 क्यूसेक पीने और सिंचाई के लिए 500 क्यूसेक पीने के लिए अतिरिक्त पानी जाता है। राज्य को 12 प्रतिशत मुफ्त बिजली के 1000 करोड़ के लगभग मिल चुके हैं।

इसी सुमन नगर में प्लॉट नं. 366, 421 और 422, बीस वर्ष पहले आवंटित हुए थे। इन्हें भूमिधर अधिकार नहीं मिला। कारण कि वह जमीन कागजों में नदी की जमीन है। विस्थापितों को भूमि आवंटन में कितने घोटाले हुए हैं इसकी जांच भी जरूरी है पर कौन करेगा? कोयले की कोठरी में काला ही काला है।

सरकार को मालूम है कि एक पीढ़ी बदलने के बाद लोग इसी तरह रहने के अभ्यस्त हो जायेंगे और फिर कोई आवाज नहीं उठेगी। आखिर अब तक के बांधों से उन्होंने भी यही सीखा है। ❑

शांति के लिए शिक्षण

❑ विलफ्रेड् वेलॉक

नैष्ठिक शांतिवादी विलफ्रेड् वेलॉक ने यह निबंध 1949 में सेवाग्राम परिषद् में प्रस्तुत किया था। इस निबंध में उठाये गये मुद्दे आज और भी अधिक प्रासंगिक हैं। **–सं.**

मानवता का घात : हमारे जमाने की मुख्य-मुख्य बुराइयों की मुख्य जड़ और संकुलयुद्ध तथा नित्य गंभीर रूप धारण करने वाले वैचारिक संघर्षों का मूल तथा प्रत्यक्ष कारण यह है कि हम धर्म और कला के साथ परिश्रम का अनुबंध नहीं कर पाये। परिणाम यह हुआ कि मनुष्य का व्यक्तित्व बिलकुल छिन्न-भिन्न हो गया है। कुटुम्ब और समाज का विध्वंस हो रहा है और कलुषित तथा उलझे हुए आंतर्राष्ट्रीय संबंध स्थापित हो गये हैं।

इस असफलता का मुख्य कारण वह भौतिकवाद है, जिसकी बदौलत यंत्रीकरण से संपन्न परिश्रम में तथा परंपराबद्ध गतानुगतिक पूर्व में सदियों से सर्वसाधारण जनता का शोषण जारी है। दोनों जगह शोषण के कारण जनता के मानवीय गुणों की हानि हुई है—पश्चिम में एक ही प्रकार के श्रम की पुनरावृत्ति के कारण और पूर्व में भयानक दरिद्रता की बदौलत।

वित्तवादी वृत्ति का परिणाम : पश्चिम के अत्यन्त यंत्र-प्रधान जीवन का समर्थन करने वाले प्रायः यह दलील देते हैं कि यंत्रों की सहायता से परिश्रम के घंटे कम होते हैं और मनुष्य को भरपूर अवकाश मिलता है, जिसमें वह अपनी सारी विधायक शक्तियों का विकास कर सके।

परंतु यह भ्रम है। जिस समाज में बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है और उत्पादन में एक ही प्रकार की क्रिया की लगातार पुरावृत्ति करनी पड़ती है, उसमें मनुष्य पैसे के ही लिए काम कर सकता है। इस प्रकार वह जड़वादी बन जाता है। वह अपने सारे सुख और आराम नकद पैसे देकर खरीदने की आशा रखता है। नतीजा यह होता है कि सभी दिशाओं में आवश्यकताओं और मांगें बढ़ती चली जाती हैं। इसका कहीं अंत नहीं आता। भौतिक सुखवादी समाज के झूठे पैगम्बर हमें जिसे अवकाश का आश्वासन देते हैं वह सारी चीजों की और सेवाओं की निरंतर बढ़ती हुई मांग को पूरी करने में खप जाता है।

बुनियादी शिक्षण-प्रणाली का प्रयोजन : इसके अतिरिक्त भौतिक आवश्यकताओं का यह विस्तार, जिसे हम जीवनमान कहते हैं, राष्ट्रीय और आंतर्राष्ट्रीय अर्थनीति का प्रधान अंग बन जाता है, क्योंकि इस प्रकार के हरेक देश में पैसे की अर्थनीति प्रचलित होती है। फलस्वरूप ऐसी परिस्थिति पैदा होती है जिसमें चीज की हर मांग के साथ उसका उत्पादन मेल नहीं खाता, जैसे कि अन्न के मामले में हुआ है। उत्पादन के प्राकृतिक साधनों के लिए प्रतियोगिता पैदा होती है जिसका परिणाम अनिवार्यतः साम्राज्यवाद, वैचारिक संघर्ष तथा जगत् व्यापी युद्धों में होता है। इसलिए हमारी शास्त्रीय और वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद भी हर पीढ़ी में साधन-संपन्न साधनहीन वर्ग पैदा होते हैं और उत्तरोत्तर अधिक सैनिक-खर्च की मांग की जाती है। इसी कारण मनुष्य के अवकाश का समय भी नहीं बढ़ सकता। इस प्रकार हम यह आविष्कार करते हैं कि विश्वशांति की कुंजी एक ऐसे आर्थिक विधान के विकास में है जो स्वरूपतः शांतिनिष्ठ हो, जिसमें युद्ध का कारण बनने वाले आर्थिक संघर्ष न पैदा होते हों। इस प्रकार का अर्थ-विधान बुनियादी शिक्षण का प्रयोजन है। प्रत्येक देश में विधायक और सहयोगात्मक जीवन की सिद्धि ही उस शिक्षण-प्रणाली का सार है।

इस आविष्कार के सुपरिणाम : इस आविष्कार के महत्त्व पर जितना जोर दिया जाय उतना कम ही है। वह हरएक मानवीय और सामाजिक क्रिया का स्वरूप ही बदल देता है। वह एक ऐसे नवीन अर्थ विधान को जन्म देता है, जिसका संपूर्ण मानव तथा अखिल मानवता की आवश्यकताओं से संबंध है।

आंतर्राष्ट्रीयता की भाषा में इसका अर्थ यह है कि बुनियादी शिक्षण स्वीकार करने पर राष्ट्रों को संसार के प्राकृतिक साधनों के विषय में अपनी माँगें मनुष्य के साध्यों और आवश्यकताओं की मूलभूत कल्पनाओं के अनुसार मर्यादित करनी होंगी। इसलिए यदि हम बुनियादी शिक्षण का उसके सारे संकेतों के साथ प्रयोग करें तो एक ही चोट में आधुनिक जगत् के संघर्ष के सारे मुख्य कारणों का निवारण हो सकता है।

ऐसी परिस्थिति में हम संसार की राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं का सामना नयी आशा लेकर कर सकते हैं। आंतर्राष्ट्रीय संबंधों में सरलता लाने के लिए जिन संगठनों की जरूरत होगी, उनके स्वरूप का विचार यहां करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि एक बार प्रमुख संघर्षों का निराकरण करके क्षेत्र साफ करने के बाद इन संगठनों के स्वरूप का निर्णय करना बहुत आसान होगा।

इस व्याधि का उपचार : जब तक राष्ट्रों का उद्देश्य भौतिक जीवन के मान को बढ़ाता ही रहेगा, तब तक किसी भी प्रकार के विश्व-राज्य की आशा नहीं हो सकती, क्योंकि भौतिक सुखवादी समाज में जिन देशों का जीवन का मान बढ़ गया है वे, उसे निबाहने और बढ़ाने के लिए संयोजन और प्रयास किये बिना नहीं रहेंगे। नतीजा यह होगा कि संसार के दूसरे हिस्सों में विद्रोह और वैचारिक विप्लव पैदा होंगे। विप्लवों को उत्तेजन मिलेगा। इसका यह नतीजा होगा कि उन्हें अपनी राष्ट्रीय आमदनी का बहुत

बड़ा हिस्सा उत्तरोत्तर अधिक मात्रा में सैनिक खर्च में लगा देना होगा। इससे राष्ट्र का आर्थिक स्वास्थ्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा, जैसा कि आज हो रहा है। परंतु इन सारे परिणामों की उपेक्षा करके वे अपनी भौतिक-जीवन-प्रणाली का मान बढ़ाने की कोशिश बराबर करते रहेंगे। ऐसी परिस्थिति में विश्व-राज्य, संसार की मूलगामी समस्याओं को टालता रहेगा। भौतिकवाद की इस धुन के कारण समाज में जो संघर्ष पैदा हो गये हैं, उनका जब तक निवारण न होगा तब तक अखिल जागतिक भूमिका पर कार्यक्षम-सहयोग व्यावहारिक नीति के रूप में सिद्ध नहीं होगा। इस भौतिकवाद तथा उसके परिणामों के निवारण के लिए बुनियादी शिक्षण गांधी-प्रणीत उपचार है।

बुनियादी-शिक्षण के प्रयोग की सामग्री : बुनियादी-शिक्षण के लिए कितने बड़े और किस प्रकार के सामाजिक क्षेत्र की कल्पना की गयी है, इसका अब हमें विचार करना चाहिए। बुनियादी शिक्षण जिन मूल्यों पर आधार रखता है, उनका हम ध्यान रखें। इन मूल्यों में जिम्मेवारी, उत्पादन के लिए अवसर और कई तरह के सामुदायिक सहयोग का समावेश होता है। इन साधनों द्वारा समग्र तथा स्वावलंबी व्यक्तित्व का विकास होगा और ऐसे मानव-समुदाय प्रस्तुत होंगे जिनको अपनी एकता और आंतरिक शक्ति का प्रत्यय होगा और जो बहुत बड़ी मात्रा में स्वयंपूर्ण बन सकेंगे।

बुनियादी शिक्षण के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक उद्देश्यों में निम्न बातों का समावेश होता है : (1) मर्यादित आकार का समुदाय, जिसको हरएक व्यक्ति अपने मन और अपनी कल्पनाशक्ति द्वारा आकलन कर सके और जिसके हरएक सदस्य के साथ सामाजिक संबंध का अनुभव कर सके। (2) ऐसे छोटे-छोटे उद्योग-धंधे, जिनपर सामुदायिक स्वामित्व होगा और जिनका संचालन सहयोग की प्रणाली से होगा। (3) जहां पर यंत्र-शक्ति का उपयोग होगा, वहां नये प्रकार की यांत्रिक पद्धतियों की जरूरत रहेगी।

प्रयोग-क्षेत्रों का स्वरूप : इन छोटे-छोटे समुदायों का आर्थिक तथा सामाजिक जीवन उनके राजनैतिक जीवन का आधार होगा। इस राजनैतिक जीवन का नियंत्रण छोटी-छोटी समितियों द्वारा होगा। अलग-अलग देशों की आवश्यकताओं के अनुसार इन समितियों के नाम और विधान अलग-अलग तरह के रहेंगे। इन छोटे-छोटे समुदायों के आकार और बनावट के अनुसार उनमें स्वयं-पूर्णता की मात्रा होगा। जिन देशों में यंत्रीकरण बहुत बढ़ गया है, वहां भी छोटी-छोटी औद्योगिक इकाइयां, जो अनेक या बहुत से गांवों की जरूरतें पूरी करेंगी, निःसंदेह स्थापित की जायेंगी। इसके लिए कुछ संयोजन की और प्रादेशिक अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकता होगी। जहां पर ऐसी परिस्थिति न हो, वहां पर भी प्रादेशिक अर्थनीति लाभकारी साबित होगी। इसके कई कारण हैं। एक छोटे से देहाती शहर के आसपास का ग्राम-समूह सबके लिए बहुत महत्त्व का सांस्कृतिक केन्द्र हो सकता है और उसके द्वारा विविध प्रकार के उन्नत कलात्मक जीवन को प्रोत्साहन मिल सकता है। यहां तक कि वे एक नये रचनात्मक युग का प्रवर्तन कर सकते हैं।

इन नये सामाजिक क्षेत्रों की एक और विशेषता रहेगी। उनमें खेती का नाना प्रकार के हस्तव्यवसायों और छोटे-छोटे उद्योगों से संयोग होगा। इसलिए वहां की व्यवस्था में परस्परानुबंध होगा, जिसमें से समग्रता की भावना पैदा होगी। इसके सिवा एक ऐसे समाज का सदस्य होना, जो अच्छी खेती की ऊपज से सम्पन्न है और कई प्रकार के कला-कौशल से विभूषित है, साहित्य, चित्रकला, संगीत, नाट्य, नृत्य आदि द्वारा अभिव्यक्त विचार तथा कल्पना-वैभव से भी समृद्ध है, अपने आप में एक अनमोल सिद्धि है।

ये छोटे-छोटे ग्राम-समुदाय कई तरह के होंगे और उनका संगठन भी कई प्रकार का होगा। साधारण रूप से पूर्व के ग्राम-समुदाय अधिक सीधे-सादे होंगे और पश्चिम की अपेक्षा वे अधिक मात्रा में स्वयंपूर्ण भी होंगे, क्योंकि उनकी जलवायु तथा भौगोलिक परिस्थिति अलग प्रकार की है।

बहुत से गांव हमारी नयी कल्पना के अनुसार पूरी तरह नये बनाये जायेंगे। दूसरे कुछ पुराने गांवों का पुनर्निर्माण होगा।

पश्चिम में बहुत से गांवों में छोटे पैमाने पर यंत्रशक्ति का प्रयोग शुरू किया जायेगा। इससे उन्हें एक विशिष्ट स्वरूप प्राप्त होगा। साथ ही साथ इस बात पर जोर दिया जायेगा कि घरेलू धंधों में व्यक्तिगत और कौटुम्बिक एकता के विकास की अद्‌भुत शक्ति है।

जिन उद्योगों में बहुत केन्द्रीकरण हो चुका है, उनमें से जो समस्याएं पैदा होती हैं, उनका विचार यहां नहीं हो सकता। परंतु आज पश्चिम में जिस प्रकार का औद्योगिक संगठन है, उनमें से 60 प्रतिशत उद्योगों का विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है। शेष 40 प्रतिशत का विचार आज ही न करें तो कोई हानि नहीं है।

बुनियादी शिक्षण की विशेषता : इस तरह की पृष्ठभूमि में हम बुनियादी शिक्षण या जीवन की कला के प्रयोग तथा अध्यापन का विचार करते हैं। शिक्षण की यह पद्धति बुनियादी है, क्योंकि वह केवल एक वाद नहीं है, वह जीवन की एक प्रणाली है। द्रव्योपार्जन और लाभ के लिए संयोजन के विपरीत यह प्रणाली आत्म-समर्पण द्वारा आंतरिक शक्ति के विकास की प्रक्रिया है। यह जीवन-प्रणाली सर्वस्व का समर्पण करता है। इसलिए वह सब कुछ पाती है। दूसरी जीवन-प्रणाली सब कुछ अपने काबू में करना चाहती है। इसलिए सर्वस्व खो देती है। आत्म-समर्पण से सर्वत्र हृदय और हाथ खुलते हैं और इसलिए सार्वत्रिक मित्रता तथा अपरिमित आध्यात्मिक संपत्ति का लाभ होता है। इसके विपरीत स्वार्थ साधन की वृत्ति निर्जीव वस्तुओं से चिपटती है और अनमोल रत्नों से वंचित रह जाती है।

स्वयं-प्रेरित प्रयोग से आरंभ : अब सवाल यह है कि ये नये क्षेत्र किस प्रकार कायम किये जायँ। स्पष्ट है कि जिनको उस

प्रकार की दृष्टि है वे ही उनका निर्माण कर सकेंगे। इसलिए फिलहाल बहुत दिनों तक बुनियादी शिक्षण के सिद्धांत के अनुसार छोटे पैमाने पर सामुदायिक जीवन का विकास स्वयं-प्रेरणा से, बिना सरकार की सहायता से होना चाहिए। इस प्रकार के केन्द्रों में हर व्यक्ति को संपन्न जीवन का अनुभव होगा और इसी प्रकार उनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

आत्मबल का आधार : प्रायः पुनर्रचना और संजीवन के कार्य का परंपरा तथा चिर-प्रस्थापित स्वार्थों से विरोध होता है। इसलिए असत्य और निष्ठुर प्रतिरोध भी हो सकता है। इसी में बुनियादी शिक्षण के कार्यकर्ता की असली कसौटी होगी, उसके आत्मबल की, जिस आत्मबल का आधार नम्रता, धीरज और आध्यात्मिक चमत्कारों की संभवनीयता में असीम विश्वास है। अंततः मनुष्य-स्वभाव की बुराई पर अच्छाई की विजय यही है। इस आध्यात्मिक पुनर्जीवन की प्रक्रिया जिस प्रकार शीघ्र फलदायी हो सकती है, उसी प्रकार उसमें विलम्ब भी हो सकता है। इसलिए धीरज की जरूरत है। साधारण रूप से आत्मसमर्पण मनुष्य को प्राप्त होने वाली शक्तियों में से सबसे अधिक प्रभावशाली है और जो लोग मूलभूत जीवन-प्रणाली का उपक्रम करना चाहते हैं उनको इसी शक्ति का भरोसा करना चाहिए। गांधी ने कहा था कि बुनियादी शिक्षण का आरंभ बच्चे के गर्भ में आते ही होता है और वह मृत्यु के क्षण तक जारी रहता है।

आध्यात्मिक मूल्यों की पुनः प्राप्ति : हमें अपने मुख्य-मुख्य राष्ट्रीय तथा जागतिक प्रश्नों को हल करने के लिए आध्यात्मिक मूल्यों के पुनरुद्धार तथा पुनः प्राप्ति पर भरोसा रखना चाहिए। आधुनिक भौतिकवाद के उत्कर्ष के इस युग में रूस को स्वतंत्रता और उन्नति का सबसे बड़ा दुश्मन मानना घातक कल्पना-दारिद्रय का परिणाम है। हमको यह न भूलना चाहिए कि सामाजिक और आर्थिक विनाश में से सोवियेत रूस का जन्म हुआ है और कम्युनिज्म जीवन का अधिक श्रेयस्कर तरीका खोजने का एक प्रामाणिक प्रयास है। उसको इस उद्देश्य में सफलता नहीं मिली, इसलिए उस खोज को जारी रखना और भी जरूरी हो जाता है। समाजवाद और साम्यवाद चाहे अपनी निष्ठा कितनी ही बार घोषित क्यों न करे, उन्होंने पूंजीवाद वित्तप्रधान मूल्यों को अपना लिया है। इसलिए वे उस पद्धति की दलदल में फँसकर छटपटा रहे हैं। बड़े-बड़े राष्ट्रों की पिछले 50 वर्षों में जो कूटनीति रही है, उसपर प्रकाश डाला जाय तो ऐसा कौन-सा देश है जो अपने पड़ोसी पर दोष लगा सकेगा?

पूंजीवाद का पर्याय अब तक नहीं मिला है। हमारा यह मत है कि गांधीजी के बुनियादी शिक्षण में वह उपलब्ध हो सकता है। मानवता को आत्म-प्रनाश से बचने का वह अंतिम अवसर देता है। प्रत्येक देश के स्त्री और पुरुष फिर एक बार अच्छे दिनों के आगमन के लिए आकाश की तरफ ताकने लगे हैं। वहां से कोई संकेत नहीं मिलता। मुक्ति तो प्राप्त करनी ही है और साहसमय जीवन ही उसे प्राप्त कर सकता है। केवल बीस या दस या एक व्यक्ति का साहस भी शायद परिस्थिति को बचा ले।

उपनिवेश निवासियों का उद्धार : औपनिवेशिक शासन से पृथ्वी के कई बड़े-बड़े प्रदेशों को मुक्त करना अभी बाकी है। राज्य करने वाली जातियों के लोगों का यह खास कर्तव्य है कि वे उपनिवेशों में रहने वाले लोगों को स्वतंत्रता प्राप्त करा दें। बुनियादी शिक्षण ऐसे लोगों की स्वतंत्रता का एक प्रधान साधन है, क्योंकि उसके द्वारा स्वावलंबन, सामाजिक स्वयंपूर्णता और सहयोगात्मक प्रयत्नों का विकास होता है। तरुणों के लिए वीरता और पराक्रम का यह विशाल क्षेत्र खाली पड़ा है, क्योंकि साम्राज्यवादी राष्ट्रों में आत्मिक विकास का अवसर देने वाले व्यवसाय बहुत ही थोड़े हैं।

निःशस्त्रीकरण : शस्त्रीकरण के लिए जो भय जिम्मेवार है, उनका निराकरण किये बिना निःशस्त्रीकरण की माँग करना वास्तविकता से खिलवाड़ करने के समान है। इस कठोर सत्य का सामना करना आवश्यक है कि प्रचलित अन्यायों, विषमताओं, विपत्तियों, अत्याचारों, सत्तावादी राजनीति से उत्पन्न परस्पर विरोधी विचार-प्रणालियों, नित्य उग्ररूप धारण करने वाली हमारे जमाने की आर्थिक और सांपत्तिक समस्याओं के इस कोलाहल में निःशस्त्रीकरण एक निरर्थक स्वप्न है। जिस शांतिवादी आंदोलन का मूलगामी सामाजिक पुनर्रचना और मानव के रूप परिवर्तन से अनुबंध नहीं होगा, वह अवश्य असफल होगा। आज के जमाने में अवसर हमारे हाथ से निकलता जा रहा है।

युद्ध-प्रतिकार : इसका यह मतलब नहीं है कि युद्ध पर अधिष्ठित समाज में नैष्ठिक और निश्चयात्मक युद्ध-विरोध के लिए कोई स्थान नहीं है। उलटे, जो शांततावादी शांति की आवश्यकताओं के अनुसार जीवन बिताने की कोशिश करता है, उसे यदि लड़ाई छिड़ जाय तो अपनी आत्मा के आदेश का पालन करना चाहिए। उसे दो भूमिकाओं की पूर्ति करनी होगी। एक हद तक वह जरेमिया का काम करेगा, जो कि सत्य का इनकार करने वाले इस युग को शाश्वत सत्य का निर्णय देगा और दूसरे उसे युद्ध-प्रधान अर्थनीति का विधायक पर्याय संसार के सामने रखने का कर्तव्य भी पूरा करना होगा।

युद्ध के मूल कारण : प्रायः कहा जाता है कि आम जनता युद्ध नहीं चाहती। युद्ध के लिए केवल सरकारें ही जिम्मेवार हैं। यह प्रश्न महत्त्व का है, क्योंकि यदि यह कथन सच है तो फिर युद्ध का अंत कर देना मूलभूत प्रश्न नहीं रह जाता। लेकिन सच तो यह है कि पहले की अपेक्षा आज राष्ट्रों के जीवन में युद्ध के बीज कहीं अधिक गहरे पैठते हैं। युद्ध का कारण केवल

पूंजीवादियों का लोभ ही नहीं है और न केवल सरकारों की सत्तावादी राजनीति ही है, बल्कि प्रायः सभी देशों में श्रमिकों को इस उच्च जीवनमान की अपेक्षा रखने को प्रोत्साहित किया जाता है, वह भी युद्धों के कारणों में से एक कारण है। इसलिए हम सबको नम्र होकर चलना चाहिए और युद्ध के मूल का तथा कारणों का अधिक गहराई के साथ विचार करना चाहिए। हमें अपने-आपसे पूछना चाहिए कि हम अपने विलासमय जीवन के कारण संसार के प्राकृतिक साधनों की जो मांग करते हैं, उसमें कितनी हिंसा है और शांति की स्थापना में हमारा अपना व्यक्तिगत भाग क्या होगा?

चतुर्विध कार्य : हरएक जमाने के अपने खास प्रश्न होते हैं और जनता से खास माँगें होती हैं। वर्तमान युग चार दिशाओं में कार्य की माँग करता है : (1) व्यक्तिगत अनुशासन और व्यक्तिगत जीवन की सादगी, जिससे कि दुनिया के प्राकृतिक साधनों की हमारी माँग में और अखिल मानव जाति की आवश्यकताओं में सामंजस्य स्थापित हो। यह आवश्यक है कि मानव-कुटुम्ब के दूसरे व्यक्तियों के साथ हम अपनी एकता अनुभव करें। (2) ऊपर बतलायी हुई दिशा में समाज का संगठन करने के लिए व्यक्तिगत और सामुदायिक प्रयत्न। (3) इन बुनियादी सामाजिक परिस्थितियों की स्थापना की आवश्यकता लोगों को समझना। (4) स्वयं अपने देश में जागतिक शांति की नींव रखने के लिए और राष्ट्रीय आर्थिक नीति संसार की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिए तथा अधिक से अधिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के उद्देश्य से राजनैतिक मत प्रभावित करना।

यह नीति तात्कालिक है या दीर्घकालीन, कौन कह सकता है? वह ऐसी नीति है जो अधिक से अधिक भरोसा उस शक्ति पर रखती है जिसे गांधी आत्मबल कहते थे और जिसे कोई नाप नहीं सकता।

प्रस्तुति : बद्रीनाथ सहाय

(सर्वोदय, फरवरी, 1950 अंक से)

गतिविधियां एवं समाचार

उत्तर प्रदेश कार्यसमिति की बैठक संपन्न : उत्तर प्रदेश सर्वोदय मंडल की बैठक में कुल 8 जिलों के प्रतिनिधियों व कार्यकर्ताओं ने 6 अप्रैल, 2014 को गांधी भवन, लखनऊ में भाग लिया। बैठक की अध्यक्षता प्रदेश अध्यक्ष श्री मधुसूदन उपाध्याय ने की। प्रारंभ में कर्णभाई को श्रद्धांजलि दी गयी। प्रतिनिधियों ने अपने-अपने क्षेत्र में किये गये कार्य की जानकारी प्रस्तुत की।

फर्रुखाबाद के साथी ने बताया कि विद्युत शवदाह गृह की मांग को लेकर अनशन पर बैठा गया ताकि गंगा के अंदर लाशें न डाली जायें, लकड़ियां बर्बाद न हों। देश की सबसे बड़ी पंचायत में जाने के लिए कोई मानक नहीं है। शैक्षिक योग्यता, उम्र तय होनी चाहिए। 543 में से 165 अपराधी हैं। मुकदमों, न्याय की समय-सीमा तय होनी चाहिए।

मगहर : प्रदेश में हर इकाई का एक ही बैनर हो और एक ही दिन एक जैसा कार्यक्रम पूरे प्रदेश में कराया जाय।

बदायूं में 30 जनवरी से भगवान सिंह ने 14 दिनों तक अनशन किया। गो-हत्या के विरुद्ध जन जागृति पैदा करने की कोशिश की। गोहत्या बंदी के लिए एस.एस.पी. ने आश्वासन दिया।

हरदोई जिले की जानकारी देते हुए विजय भाई ने बताया कि 11 सितंबर को गोष्ठी की, जिसमें लगभग 250 लोग उपस्थित रहे। कार्यक्रम में प्रबुद्ध लोगों ने भाग लिया। मैंने 11 सितंबर से 2 अक्टूबर के बीच गांव-गांव और स्कूल-कॉलेजों में गया।

वाराणसी में हुए कार्यक्रमों की जानकारी देते हुए जागृति राही ने कहा कि 11 सितंबर को ग्रामीण क्षेत्र राजापुर में संत विनोबा भावे जयंती पर ग्रामीणों के साथ बैठक की गयी, 2 अक्टूबर को सर्व सेवा संघ परिसर में निबंध व भाषण प्रतियोगिता कार्यक्रम में भागीदारी, 22 दिसंबर को इंसाफ सबके लिए कार्यक्रम का आयोजन, जनवरी माह में राजापुर, सूजाबाद, कोनिया, नक्खीघाट में मतदाता जागरूकता एवं जन घोषणा-पत्र का निर्माण। 22 जनवरी को आचार्य राममूर्ति जयंती पर ग्रामस्वराज सम्मेलन। 26 मार्च को साझा संस्कृति मंत्र के साथ मीडिया के खिलाफ ज्ञापन दिया गया।

उत्तर प्रदेश सर्वोदय मंडल के काम को गति देने के लिए सात सदस्यीय कोर कमिटी बनायी गयी, जिसकी अगली बैठक 20-21 अप्रैल को वाराणसी में होगी।

–मधुसूदन उपाध्याय

× × ×

छठवीं पुण्य-तिथि मनाई गयी : विनोबाजी द्वारा स्थापित प्रस्थान आश्रम के संस्थापक-संचालक ब्रह्मलीन यशपालजी मित्तल की 6ठवीं पुण्य-तिथि पर प्रस्थान आश्रम, खानपुर, पठानकोट में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। आश्रम में विशेष प्रार्थना एवं हवन यज्ञ किया गया। सर्वश्री बलदेव राज यदुवंशी, अशोक शर्मा, स. स्वर्ण सिंह, डेराबाबा नानक ने भावभीनी श्रद्धांजलि देते हुए उनके पावन कार्य को आगे बढ़ाने का संकल्प जाहिर किया तथा आश्रम को सदैव सहयोग देने का आश्वासन दिया।

प्रस्थान आश्रम में विनोबा भावे की प्रतिमा स्थापित हो, आश्रम संरक्षिका बहन सुमति मित्तल के संकल्प को पूरा करने के लिए श्री अशोक शर्मा ने रुपये 3100/- प्रदान कर इस भगीरथ यज्ञ-कार्य का शुभारंभ किया। आश्रम अध्यक्षा बहन तारा बहैल, सुमति मित्तल, कीर्ति मित्तल, यशपाल गुप्ता, जगमोहन महाजन, अमिता शर्मा, विमला डोगरा, निष्ठा सिंगला, एस.सी. मनचंदा, एम डोगरा, नीलम महाजन तथा डे केअर सेंटर की बहनों एवं स्थानीय मित्रों ने बड़ी संख्या में भाग लिया।

–यशपाल गुप्ता

सेवा-सौरभ

चण्डीप्रसाद भट्ट : रचनात्मकता का सम्मान

❑ रमेश पहाड़ी

चिपको आंदोलन के प्रणेता और उत्तराखण्ड में गांधीवादी विचारों के आधार पर विभिन्न रचनात्मक गतिविधियों को आगे बढ़ाने वाले इक्यासी वर्षीय चण्डीप्रसार भट्ट को इस बार अंतरराष्ट्रीय गांधी शांति पुरस्कार के लिए चुना गया है। चिपको आंदोलन में आमजन, मुख्य रूप से ग्रामीण महिलाओं को जोड़कर प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षरण, विकास और सम्यक् उपयोग के विचार को गांधीवादी तरीके से सरकार तक पहुंचाकर पूरी वन-व्यवस्था पर विश्व का ध्यान आकर्षित करने वाले चण्डीप्रसाद भट्ट कठिन सामाजिक-आर्थिक परिवेश में पले-बढ़े और उन्होंने इसमें व्याप्त विषमता, अन्याय तथा उत्पीड़न को बहुत निकट से देखा और झेला है। इसी से उनके बाल मन में ऐसी बुराइयों के प्रतिकार का विचार पैदा हुआ। इसकी शुरुआत आपने अपने छोटे-से गांव गोपेश्वर से की और दलित जाति के हलवाहे तथा मिस्त्रियों, जिन्हें अछूत माना जाता था, के साथ बैठकर भोजन कर सदियों से चली आ रही छुआछूत की प्रथा पर पहला प्रहार किया।

पारिवारिक आर्थिक कठिनाइयों के कारण नियमित पढ़ाई का खर्च नहीं जुटा पाये। इसलिए टुकड़ों में विद्यालयीन शिक्षा पूरी कर एक छोटी नौकरी शुरू कर दी। इससे घर-परिवार के लिए रोटी-कपड़े का जुगाड़ तो हो गया, लेकिन सामाजिक विषमता के विरुद्ध मन में जो आक्रोश उपजा था, उसकी शांति का आधार नहीं मिला। सन् 1956 में जयप्रकाश नारायण बद्रीनाथ यात्रा पर आने वाले थे। इसी सिलसिले में भट्टजी की सर्वोदयी कार्यकर्ता मानसिंह रावत से भेंट हो गयी। सर्वोदय की विचारधारा पर हुई चर्चा से भट्टजी को मानो वह मंजिल मिल गयी, जिसके लिए उनका मन-मस्तिष्क भटक रहा था। इसके बाद जे. पी. और विनोबा भावे की यात्राओं में शामिल होने तथा सर्वोदयी विचारों से अधिकाधिक परिचित होने के बाद उनके विचारों को पूर्णता प्राप्त होती चली गयी। अंततः उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे सर्वोदय के माध्यम से ही सामाजिक बदलाव के लिए काम करेंगे। दो-तीन वर्षों तक परिवार की मान-मनौव्वल के बाद नौकरी छोड़ने के लिए उनकी सहमति प्राप्त की और बनारस जाकर सर्वोदयी सिद्धांतों व व्यवहार का अध्ययन व अनुशीलन किया।

वापस लौटकर अपने गांव गोपेश्वर से ही उस ज्ञान को व्यवहार में उतारने का अभियान आरंभ किया। सबसे पहले उन्होंने श्रम की महत्ता को प्रतिपादित करने के लिए श्रम संविदा समिति बनाई। समान श्रम, समान पारिश्रमिक, समान भोजन, समान बिस्तर के सिद्धांत को व्यवहार में उतारकर समतावादी समाज की कल्पना को व्यवहार में लाने की पहल की। महिला सशक्तीकरण की उनकी सोच की प्रखरता तथा व्यवहार में उतारने की प्रतिबद्धता का ही परिणाम था कि नशाबंदी के लिए हजारों महिलाएं घरों से बाहर निकलीं और आंदोलन में कूदीं। कुछ महिलाएं अपने दुधमुँहे बच्चों के साथ जेलों में भी ठूंसी गयीं। सामान्य घर-गृहस्थी तक सीमित रहने वाली पहाड़ी महिलाएं राष्ट्रपति भवन तक पहुंचीं और अंततः उन्होंने उत्तराखण्ड में शराबबंदी लागू करवाने में सफलता हासिल की। यही महिलाएं बाद में प्राकृतिक संसाधनों की खुली लूट के विरुद्ध चिपको आंदोलन की सेनानी और नायिकाएं भी बनीं।

1964 में आपने अपने कुछ साथियों के साथ दशोली ग्राम स्वराज्य संघ (अब मंडल) की स्थापना कर स्थानीय संसाधनों, जिसमें मानव संसाधन भी शामिल था, के सदुपयोग की कार्ययोजना पर काम शुरू किया। यही संस्था आगे चलकर सामाजिक सरोकारों के लिए सामाजिक गतिमानता का एक सशक्त केंद्र बनी। बाद के वर्षों में इसके माध्यम से अनेक अभियान और आंदोलनों के साथ-साथ अनेक अध्ययन यात्राएं और व्यावहारिक प्रयोग किए गए। अपने देश व समाज, प्रकृति और संसाधनों को समझने तथा सामाजिक उद्देश्यों व संबंधों को परस्पर जोड़ने के इन क्रियाकलापों से उत्तराखंड में सामाजिक गतिशीलता को बढ़ाने और दलितों, पिछड़ों का मनोबल ऊपर उठाने में मदद मिली। यह क्रम अभी भी निरंतर चल रहा है।

अपने मिशन में भट्टजी कहां तक सफल हो पाए हैं? इस प्रश्न पर बिना लागलपेट वह कहते हैं—'इसका मूल्यांकन समय और समाज करेगा'। उनका कहना है—'कार्यों और सफलताओं पर नामपट्ट लगाने की जरूरत उन्हें कभी महसूस नहीं हुई...। ''हम लुप्त हों, समाज और लोगों की हैसियत बढ़े। समाज के ज्ञान व शक्ति का उपयोग उनकी क्षमता और सोच बढ़ाने में हो और सब मिलकर समाज की बेहतरी के लिए काम करें, ये प्रयास लगातार जारी रहने चाहिए।''

वर्तमान उपलब्धियों से वह संतुष्ट नजर नहीं आते और मानते हैं कि समाज को संगठित होकर सतत् संघर्षशील रहना होगा। उनका विश्वास है कि 'समाज में ही विसंगतियों को मिटाने की ताकत है और उस ताकत का इस्तेमाल समाज हमेशा करता रहता है। एक दिन ऐसा जरूर आएगा, जब ग्राम स्वराज्य और समतावादी समाज की कल्पना साकार होगी'। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) अशोक भारत (प्रकाशक), सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित तथा सर्व सेवा संघ-परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001, फोन एवं फैक्स नं. 0542-2440385 से प्रकाशित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1500